जयंत

[नाटक]

लेखक

रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

पहला संस्करण]   जनवरी, १९३४   [दाम बारह आने

जिसके स्नेह ने
हृदय में मिठास भर दी
उसी को समर्पित

भूमिका

दिसम्बर १९३३ के तीसरे सप्ताह से लेकर जनवरी १९३४ के दूसरे सप्ताह तक मैंने दक्षिण भारत और पश्चिम भारत के भिन्न-भिन्न रमणीय स्थानों में साहित्यिक भ्रमण किया था। इस भ्रमण में मुझे शिक्षित जनता से आमतौर पर यह शिकायत सुनने को मिली कि हिन्दी मे मौलिक नाटकों का बड़ा अभाव है। कितने ही मित्रों और परिचितों ने भी मुझसे अनुरोध किया कि मैं क्यों न एक नाटक लिख दूँ।

नाटक लिखना सहज काम तो नहीं; बाह्य और अन्तर्जगत् दोनो का जिसे अच्छा अनुभव हो, और वह अनुभव को प्रकट करने की कला मे भी निपुण हो, वही नाटक लिखने में सफल हो सकता है। मुझमे ये विशेषताएँ कहाँ? पर घर में बैठे रहकर दूसरे बटोहियों का मुँह ताकने की अपेक्षा तो स्वयं राह लगना अच्छा है, इस विचार से मैं इस नाटक के लिखने में प्रवृत्त हुआ हूँ। यह प्रयाग में ता० ११-१-३४ को प्रारम्भ हुआ और १६-१-३४ को समाप्त।

इसका प्लाट कैसा है? भाषा कैसी है? भावों को व्यक्त करने की मेरी शक्ति कैसी है? तथा नाटक का आदर्श कैसा है? यह सब बताना मेरे हिस्से का काम नहीं। मैं ख़ुद जानना चाहता हूँ कि मैंने इस मार्ग का यह पहला काम कैसा किया।

बसंत-पंचमी }
१९९० } रामनरेश त्रिपाठी

पात्र

१	हरिबल्लभ	..	सोनपुर का एक गृहस्थ
२	बसन्ती	..	हरिबल्लभ की स्त्री
३	कुसुम	..	हरिबल्लभ की कन्या
४	जयंत	..	हरिबल्लभ का पुत्र
५	मनोहरलाल	..	सोनपुर का नगर-सेठ
६	कल्याणी	..	मनोहरलाल की स्त्री
७	गौरी	..	बसंती की पड़ोसिन कन्या
८	अशोक	..	मनोहरलाल का पुत्र
९	पद्मावती	..	राजकुमारी
१०	मृदुला	..	कुसुम का दूसरा नाम
११	पंडित देवदत्त	..	एक शिक्षित गृहस्थ
१२	कमला	..	देवदत्त की स्त्री
१३	रञ्जन	..	मनोहरलाल के सिपाही
१४	बसेनू		

आचार्य, आचार्या, विद्यार्थी, छात्राएँ, राजा, रानी, मंत्री, सेनापति आदि।

जयंत

पहला अंक

पहला दृश्य

समय—दोपहर

स्थान—सोनपुर की एक गली में एक टूटा-फूटा मकान ।

(आँगन में एक टूटी चारपाई पर बसन्ती (आयु ४० वर्ष) अत्यंत दुःख-पूर्ण अवस्था में पड़ी है । पास ही कुसुम (कन्या—आयु १२ वर्ष) और जयन्त (पुत्र—आयु ९ वर्ष) बैठे है । घर में चारोंओर दरिद्रता का विकराल दृश्य है ।)

कुसुम—माँ, जयंत को क्या खाने को दूँ ? यह कई दिनों से भूखा है ।

बसन्ती—(गहरी साँस लेकर) हाय ! मैं क्या बताऊँ ! मेरे फूल ऐसे बच्चे.........(छाती पर हाथ मारकर मूर्च्छित होजाती है ।)

कुसुम—माँ, कहीं कुछ पैसे रक्खे हों तो बता, मैं उन्हें लेकर बाजार से चने ख़रीद लाऊँ। मैं भी बहुत भूखी हूँ माँ, और तूने तो पाँच-छः दिनों से अन्न का एक किनका भी मुँह के अन्दर जाने नहीं दिया। तुम भी कुछ खा लें माँ! और एक बार तू जयत की ओर देख तो ले।

(बसन्ती जयंत की ओर देखकर, उसे खींचकर गोद में चिपका लेती है और फिर आँखें बंद कर लेती है।)

बसन्ती—(कुछ देर बाद) बेटी! पैसे कहाँ रक्खे हैं? तुम्हारे पिता को मरे आज पद्रह दिन हुये। गहने-गट्ठी पहले ही बेंचकर खा चुके थे। बरतन बेचकर उनका क्रिया-कर्म किया। कपड़े केवल शरीर ढकने भर ही को हैं। बेटी! मैं क्या दूँ? हाय! मेरे फूल ऐसे बच्चे बिना पानी के मुरझा रहे हैं!

(रोती है।)

कुसुम—पिताजी ने एक बार मेरे लिये चूड़ियाँ ख़रीद दी थीं। उन्हें दो पैसे में बेच आऊँ? माँ, जयंत का उदास मुँह मुझसे नहीं देखा जाता।

(जयंत माँ की गोद में हिचकियाँ लेकर रोता है।)

बसन्ती—बेटी! मेरी अभागिनी कुसुम! वे चूड़ियाँ ही तो तेरे ग़रीब बाप की यादगार हैं। बेटी! उन्हें न बेंच। पता नहीं, चूड़ियों के लिये वे पैसे कहाँ से बचा सके थे। (गहरी साँस लेकर) जयंत के पैदा होने के बाद दो-तीन वर्ष तो बड़े सुख से कटे; फिर यकायक तुम्हारे पिता बीमार

पड़ गये। घर की सारी जमा-पूँजी उनकी बीमारी में खर्च होगई। वे अच्छे तो होगये बेटी, पर हम फिर नहीं पनपे। वे प्रतिदिन पक्षी की तरह अपने बच्चों के लिये चारे की खोज में प्रातःकाल घर से निकल जाते थे और शाम को अँधेरा होते-होते दिनभर की मजूरी से अन्न खरीदकर ले आते थे। मैं पीसती और रोटियाँ बनाकर पहले तुम दोनों को खिलाती; फिर जो बचता उसे हम दोनो बाँटकर खा लेते थे।

(गला भर आता है, रोती है)

कुसुम—पिताजी हम दोनों को बहुत ही प्यार करते थे, माँ!

बसन्ती—प्राण से भी अधिक बेटी; शाम को हम लोग किसी तरह खा-पीकर पेट भर लेते थे और सो जाते थे; पर सबेरे हम ग़रीब ही होकर उठते थे। महीनों दाल ही नहीं खाते थे; शाक-तरकारी तो साल भर में शायद किसी त्योहार के दिन बहुत कहने-सुनने पर आती थी। पाँच बरस होगये, नये कपड़े उन्होंने शरीर पर डाले ही नहीं। बहुत काटने-कपटने पर कुछ पैसे बचते, तो उससे वे नई धोती खरीद लाते; पहले मुझे पहनाते; पाँच-छः महीने जब मैं उसे पहन लेती, तब वे मेरे लिये नई धोती लाकर मेरी उतारी हुई धोती ख़ुद पहनते थे। मैं हाथ जोड़कर कहती—मेरा धर्म क्यों लेते हो? वे कहते—पुरुष का धर्म है स्त्री और बच्चों का पालन करना, मुझे इसी में सुख मिलता है।

(कुसुम रोती और दोनों हाथों से आँसू पोंछती है। बसन्ती ज़रा दम लेकर फिर कहने लगती है।)

बीमारी से उठने के बाद मैंने फिर कभी उनको हँसते नहीं देखा। बड़े सबेरे ही, जब तुम दोनों सोते रहते, वे काम की खोज मे घर से निकल जाते; शाम को देर करके आते तब पूछा करते —आज कुसुम हँस नहीं रही है, आज जयंत खेल नहीं रहा है, मालूम होता है तुमने कुछ डाट-डपट की है। मैं कहती—हँसकर और खेलकर वे थक चुके हैं। तब तुम दोनों को लेकर वे बैठ जाते और मैं रोटी पानी की फिक्र में लग जाती।

कुसुम—हम लोगो ही की चिता मे पिताजी ने प्राण दिये माँ !

बसन्ती—हाँ बेटी ! कई महीनो से उन्हे ज्वर आने लगा था। तब भी वे काम पर जाया करते थे। मैं बहुत रोकती, तब वे यह कहकर कि बच्चे क्या खायँगे ? घर से निकल जाते थे। शाम को वापस आते तो कभी-कभी ज्वर चढ़ा ही रहता और बिना खाये-पिये ही वे इसी टूटी खाट पर पड़ जाते थे।

कुसुम—(रोती हुई) इस तरह हमारे प्यार में घुल-घुलकर पिताजी ने प्राण दिये माँ ! हम बड़े ही भाग्यहीन हैं।

बसन्ती—वे हमें अनाथ छोड़ गये। बरसों से वे तेरे विवाह की चिंता मे रात-रातभर जागते रहते थे। बारबार यह कहकर व्याकुल होजाते और आँसू गिराने लगते थे कि ग़रीब की

कन्या कुसुम को कौन ब्याहेगा ? (रोती है) हाय ! वे तो संसार के दुःखों से छुटकारा पा गये; और हमारी नैया मँझधार में छोड़ गये ।

(कोई दरवाज़े की साँकल खटखटाता है ।)

बसन्ती—(कुसुम से) देख तो बेटी, कौन है ?

(कुसुम दरवाज़ा खोलती है । बसेनू और रञ्जन अंदर चले आते हैं । बसन्ती खाट पर से उतरकर नीचे बैठ जाती है ।)

बसेनू—हरिवल्लभ कहाँ हैं ? सेठ ने भेजा है कि क़र्ज़ जल्दी अदा कर दो, ब्याज बढ़ता जा रहा है; पीछे देना और भी कठिन हो जायगा ।

बसन्ती—(कातर स्वर से) पंद्रह दिन हुये, उनका देहान्त होगया । (रोती है ।)

रञ्जन—(कठोर स्वर में) सेठ का पैसा तो जी रहा है ?

बसन्ती—मुझे तो मालूम नहीं, उन्होंने सेठ से कब और कितना क़र्ज़ लिया था ।

बसेनू—क़र्ज़ लेकर मौज उड़ाने के बाद सब इसी तरह भूल जाते हैं, क्या तुम्हीं ? .ख़ैर; सेठ ने भेजा है कि आज ही सब चुकता कर दो ।

बसन्ती—मेरे पास क्या है ? बच्चे आज तीन-चार दिन से भूखे रो रहे हैं । घर में अन्न का एक दाना भी नहीं है । बरतन बेंचकर उनका क्रिया-कर्म किया । पानी पीने के लिये एक बरतन भी घर में नहीं बच गया । (रोती है) ।

रञ्जन—वह तुम्हारे सिर पर इतना क़र्ज़ छोड़कर मर क्यों गया ?

बसन्ती—मरना-जीना अपने बस की बात तो है नहीं; (कुछ देर तक सोचकर) मैं अभी बड़े दुःख में हूँ। दो-चार दिन बाद मैं सेठजी के पास चलूँगी और उनसे कुछ मुहलत माँगूँगी। यह लड़का कुछ और बड़ा हो ले, तो कमाकर यह अपने बाप का ऋण पाई-पाई चुका देगा।

बसेनू—हमको तो सेठजी ने भेजा है कि आज ही जो कुछ हो ले दे लो; पीछे तुम्हारा क्या ठिकाना ? अभी तो तुम कहती थी कि हमें मालूम ही नहीं, उन्होंने सेठ से कब और क्या ऋण लिया था। पीछे तो तुम सेठजी ही को भूल जाओगी।

बसन्ती—जो कुछ उन्होने लिया होगा, उसे देने में हमें कोई उज्र न होगा। सेठ पर तो मेरा बहुत ही विश्वास है।

रञ्जन—हम तुम्हारी लम्बी-चौड़ी कहानी सुनने नहीं आये हैं। हम तो आज सेठ का कुल ऋण वसूल करके ही जायँगे।

बसन्ती—घर में देख लो, मेरे पास क्या है ?

बसेनू—(कुसुम की ओर देखकर, जो खाट के पास माँ की बग़ल में आकर खड़ी होगई थी) हम तुम्हारी इस कन्या को ले जायँगे, जब तुम ऋण चुका दोगी तब वापस कर देंगे।

(कुसुम भय से काँप उठती है। बसेनू कुसुम की ओर हाथ बढ़ाता है। बसन्ती उठकर कुसुम से लिपट जाती है।)

बसन्ती—हाय, ग़रीब के घर में डाके न डालो। मेरी कुसुम के लिये ऐसे शब्द मुँह से न निकालो। मुझे ले चलकर कैद कर दो, पर कुसुम को मत छुओ।

रज्जन—हाँ, तुमको ले चलकर कैद कर दें, ताकि तुम्हारी क्रिया-कर्म के पैसे गाँठ से और खर्च करने पड़ें। बड़ी चालाक हो तुम।

(रज्जन और बसेनू कुसुम को पकड़ते हैं। माँ-बेटी एक दूसरे से गुँथ जाती हैं।)

बसन्ती—(घिघियाकर) मेरी कुसुम को मत ले जाओ। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। हे भगवान्! बचाओ, बचाओ; ग़रीब के धन और धर्म को बचाओ।

(कुसुम चिल्लाती है; बसेनू और रज्जन धक्का मारकर बसन्ती को गिरा देते हैं और कुसुम के मुँह में जल्दी से कपड़ा ठूँसकर उसे उठा ले जाते हैं। बालक जयंत पहले तो हक्का-बक्का खड़ा देखता रहता है। फिर कुसुम के मुँह में कपड़ा ठूँसते देखकर वह दौड़कर बसेनू के हाथ में दाँत से काट लेता है और चिल्लाता है। बसेनू जयंत को एक थप्पड़ मारकर घर से बाहर होजाता है।)

(हल्ला सुनकर पड़ोस की एक नव युवती कन्या गौरी का प्रवेश)

गौरी—हाय, कैसा अत्याचार है! दिन-दहाड़े कन्या-हरण होरहा है और कोई बोल नहीं रहा है। राज में इतनी शक्ति नहीं कि वह अत्याचारी को दंड दे सके; प्रजा में इतना बल

नहीं कि वह अत्याचार होने ही न दे। चारोंओर भयानक कायरता छाई हुई है। महल्ले के लोग पशुओं जैसे आत्माभिमान से रहित होगये हैं !

(बसन्ती की ओर देखकर)

हाय, अभागिनी बसन्ती माँ, तुम्हारी यह दशा !

(जयंत की ओर देखकर)

भइया ! पानी कहाँ रक्खा है ? बसन्ती माँ के मुँह से ख़ून गिर रहा है। लाओ, इसे धो दें।

(जयंत बसेनू का थप्पड़ खाकर तिलमिला उठा था, अब यकायक फूट-फूटकर रो पड़ा। गौरी ने आगे बढ़कर उसे चिपका लिया।)

गौरी—हाय ! फूल ऐसा सुकुमार बच्चा पहाड़-ऐसे दुःख को कैसे उठा सकेगा ? (जयंत से) भइया, पानी कहाँ रक्खा है ?

जयंत—(हिचकते हुये) पानी तो दो-तीन दिन से चुका है। माँ कुछ खाती-पीती ही न थी; बहन और मैं पड़ोसी के यहाँ जाकर पानी पी आया करते थे।

(बसन्ती प्रलाप कर उठती है)

बसंती—बचाओ, बचाओ, कुसुम को डाकू लिये जा रहे हैं। पकड़ो, पकड़ो; यही हैं यही; हाय ! मेरी कुसुम, तुम कहाँ जा रही हो !

(उठती है और दौड़ने का उपक्रम करते हुये मुँह के बल गिर पड़ती है। उसी दशा में उसके प्राण निकल जाते हैं।)

गौरी—हाय, अभागिनी के प्राण निकल गये जान पड़ते हैं। (जयन्त से) भइया, चलो, मेरे घर चलो।

जयंत—नहीं, मैं माँ के पास रहूँगा।

(गौरी बाहर जाकर महल्लेवालों को जमा करती है।)

गौरी—(पुरुषों से) तुम लोगों में क्या नाममात्र को भी मनुष्यता नहीं रह गई ? हरिबल्लभ मर गया। उसके बाल-बच्चे अनाथ होगये। आज दिन-दहाड़े उसकी कन्या कुसुम को बसंती की गोद से दुष्ट लोग छीन लेगये। तुम लोग हाहाकार सुन रहे हो और कोई बोलते तक नहीं; इससे तो स्त्री बनकर तुम्हें घर के अन्दर बैठना अधिक शोभा देता। बसन्ती का भी शरीर छूट गया; भला, अब उसके शरीर का तो अंतिम संस्कार कर आओ।

(लोग दु:ख से पीड़ित होकर हरिबल्लभ के घर मे जाते हैं और बसन्ती के शरीर को श्मशान-भूमि को लेजाने की तैयारी करते हैं)।

गौरी—आओ जयंत, घर चलें।

(गौरी जयंत को अपने घर ले जाती है।)

दूसरा दृश्य

समय—सूर्यास्त के थोड़ा ही बाद।

स्थान—सेठ मनोहरलाल का अंत:पुर।

(कल्याणी तुलसी के चबूतरे के पास बैठकर मन्द स्वर से प्रार्थना के भजन गा रही है।)

मैं माँगूँ सो दो,
मेरे प्रभु ! मैं माँगूँ सो दो।

ऐसा विभव न देना जिससे मन अभिमानी हो।
मुझे ग़रीबी दो, मैं जग का दुख सब डालूँ धो॥
हृदय को ऐसा वैभव दो।
मेरे प्रभु! मैं माँगूँ सो दो॥
किसी जीव को तुच्छ न मानूँ, ऐसा मन कर दो।
सबकी सेवा ही में जीऊँ थकूँ न पलभर को॥
देह में ऐसा बल भर दो।
मेरे प्रभु! ऐसा ही वर दो॥
मैं माँगूँ सो दो॥

(गौरी का प्रवेश)

गौरी—कल्याणी माँ, मैं अन्दर आ सकती हूँ?

(गौरी को देखकर कल्याणी भजन समाप्त करती है।)

कल्याणी—आओ, आओ, बेटी, बहुत दिनों पर आई हो। कितने दिन आये हुआ?

(उठकर हृदय से लगा लेती है।)

गौरी—परसों आई हूँ, कल्याणी माँ!

कल्याणी—(गौरी को पास बैठाकर पीठ पर हाथ फेरती हुई) कहो बेटी, सुख से तो हो? पढ़ाई ठीक चल रही है न?

गौरी—हाँ, मैंने इस वर्ष प्रांत भर में सबसे अधिक नम्बर पाया है, माँ!

कल्याणी—(पीठ पर हाथ फेरती है।) भाग्यवती बेटी !

गौरी—सब तुम्हारी कृपा का फल है कल्याणी माँ ! तुम न पढ़ने के लिये सहायता देती, तो मेरे ग़रीब माँ-बाप बेचारे क्या कर सकते थे ? (कुछ ठहरकर) आचार्याजी तुम को बहुत याद किया करती हैं। तुम्हारी प्रशंसा सुना-सुनाकर हम सबको उन्नति की ओर दौड़ाया करती हैं।

कल्याणी—(आँखों में प्रेमाश्रु भरकर) आचार्याजी का दर्शन किये दस वर्ष होगये । उनकी उत्तम शिक्षा का लाभ मैं गृहस्थी में प्रति क्षण उठाती हूँ बेटी; गृहस्थी के घोर अंधकारमय जीवन-पथ में जहाँ कहीं मुझे मतिभ्रम होता है, वहाँ आचार्याजी दीपक लिये हुये मुझे मार्ग दिखाती हुई खड़ी-सी मिलती हैं गौरी; उनके तो स्मरण-मात्र से हृदय पवित्र और बलवान होता है।

(यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा गंभीर और दृष्टि स्थिर हो जाती है।)

गौरी—अशोक भइया का क्या हाल है ? कल्याणी माँ !

कल्याणी—अशोक इस वर्ष विद्यालय की उच्च श्रेणी में गया है। गत वर्ष उसे भी बेटी, तुम्हारी तरह अच्छे नम्बर मिले थे।

(गौरी की आँखें हर्ष से डबडबा आती हैं और वह कल्याणी के मुँह पर टकटकी लगाकर देखती है।)

गौरी—कल्याणी माँ, यह तुम्हारे पुण्य का प्रताप है।

जबसे तुम आई हो, सैकड़ा कन्याओं और पुत्रों को तुमने विद्यादान दिलाया है। यह पुण्य माँ, कहाँ जायगा ?

(कल्याणी संकोच से सिर नीचा कर लेती है और गौरी की पीठ पर हाथ फेरने लगती है।)

कल्याणी—गौरी बेटी, जबतक घर रहो, एक बार मुझसे रोज मिल जाया करो। अशोक भी अब दो ही चार दिन मे आनेवाला है।

गौरी—(बातचीत में देरी होती देखकर कुछ मुश्किल-सी होकर) अच्छा कल्याणी माँ, मैं रोज़ आया करूँगी। इस वक्त तो मैं एक बहुत ज़रूरी काम लेकर तुम्हारे पास आई हूँ।

कल्याणी—(प्यार से) बोलो बेटी !

गौरी—हरिवल्लभ को तो तुम जानती हो ?

कल्याणी—हाँ, हाँ, कुसुम का पिता न ?

गौरी—हाँ, पन्द्रह दिन हुये, उनका देहान्त होगया।

कल्याणी—(दुःख से चौंककर) देहान्त होगया ? हाय, उसके बच्चे अनाथ होगये !

गौरी—आज बसन्ती माँ भी चल बसी।

कल्याणी—(मर्माहत होकर) बसन्ती भी चल बसी ? बेटी, मैं तो घर-गृहस्थी के ऐसे जंजाल मे पड़ी रहती हूँ कि मुझे बाहर की कुछ भी खबर नहीं मिलती। बसन्ती बहुत दिनो से मेरे घर नहीं आई। उसके बच्चे कुसुम और जयंत पहले मेरे घर खेलने आया करते थे। इधर वर्षों से नहीं आते। मैंने

समझा, वे पढ़ने-लिखने में लग गये होंगे। बेटी, तुम बड़े दुःखदायक समाचार लाई हो।

गौरी—मेरी माँ कहती थी कि पाँच-छः महीनों से बसन्ती घर से भी बाहर नहीं निकलती थी; क्योंकि उसके पास पहनने को कपड़े नही थे। एक फटी धोती लपेटकर वह घर ही में बैठी रहती थी। सबेरा होने से पहले और शाम होने के बाद अँधेरे मे वह कुएँ से पानी लेने के लिये घर से निकला करती थी। कुसुम और जयंत भी बहुत दिनों से घर के अन्दर ही रोक रक्खे गये थे, क्योकि उनके पास भी कपड़े नहीं थे और बाहर आने पर किसी चीज़ के लिये बच्चों का मन चल जाता, तो उसे ख़रीद देने के लिये उनके माता-पिता के पास पैसे भी नहीं थे, इसी से वे उन्हे घर मे क़ैद रखते थे।

कल्याणी—(आँखों से आँसुओं की धारा गाल पर गिर रही है।) बेटी, ससार मे बड़ा दुःख है। ग़रीबी का ऐसा हृदय-वेधक वर्णन तो मैने कभी सुना भी नहीं था। देश में न जाने कितने परिवार ग़रीबी की भयानक आग मे जल रहे हैं। हमारे सुख को धिक्कार है। हाय, कुसुम और जयंत बिलकुल ही अनाथ होगये! उन दोनों को बेटी! लाकर मेरी गोद में बैठा दो। वे मेरे बच्चे हैं!

गौरी—कल्याणी माँ, इसके आगे का दुःख सुनोगी, तो तुम और भी पीड़ित होगी। वह दुःख तुम्हारे ही घर से उत्पन्न हुआ है।

(कल्याणी भयभीत होकर गौरी का मुँह देखने लगती है।)

गौरी—तुम्हारे स्वामी के नौकरों ने आज दोपहर को कुसुम का हरण किया है। विधवा माता की भुजाओं के भीतर से अनाथ बालिका को छीनकर वे ले गये हैं। बसन्ती पति की मृत्यु से अधमरी तो हो ही रही थी, कन्या-हरण का दुःख वह न सह सकी और उसके प्राण निकल गये ।

कल्याणी—(अत्यन्त दुःखित होकर) हाय, मै यह क्या सुन रही हूँ ? मेरे घर मे पाप का प्रवेश हो रहा है ? मेरे स्वामी का अधःपतन हो रहा है। प्राणनाथ, सावधान हो; पाप की ज्वाला में संसार के समस्त सुख सूखे पत्ते की तरह भस्म हो जायँगे। हे भगवान्, मैं तो अपने स्वामी के चरित्र की प्रशंसा सुन-सुनकर फूली नहीं समाती थी; आज यह क्या सुन रही हूँ। ऐसा घोर पाप ! (गौरी से) कुसुम को मेरे स्वामी के नौकर किस अपराध से पकड़ ले गये बेटी ?

गौरी—हरिवल्लभ तुम्हारे स्वामी का क़र्ज़ अदा किये बिना ही मर गया, इस अपराध से ।

कल्याणी—जयन्त कहाँ है ?

गौरी—मैं उसे अपने घर पहुँचाकर, कुछ खाने-पीने को उसके सामने रखकर तब जल्दी-जल्दी तुम्हारे पास आई हूँ कि तुमसे हो सके तो कुसुम का उद्धार करो।

कल्याणी—बेटी, तुमने यह समाचार देकर मेरे पुण्य पर पहरा दिया है; मैं अपना प्राण देकर कुसुम की रक्षा करूँगी।

(दासी को पुकारती है । दासी आती है ।)

कल्याणी—श्यामा, तुमको कुछ खबर है, हरिवल्लभ की बेटी कुसुम को मेरे नौकर पकड़कर ले आये हैं ?

श्यामा—हाँ, मालकिन, नौकरों में दोपहर ही से कानाफूसी हो रही है कि आज बसेनू और रज्जन हरिवल्लभ की कन्या को ले आये हैं ।

कल्याणी—कहाँ रक्खा है ?

श्यामा—मुझे ठीक नहीं मालूम; पर तहखाने के अंदर से किसी के कराहने की आवाज़ मैं अभी-अभी सुनकर आ रही हूँ । फाटक पर रज्जन और बसेनू बैठे हुये हैं ।

कल्याणी—मेरे साथ चलो; उन दोनों को बुला लाओ ।

(श्यामा रज्जन और बसेनू को बुला लाती है । कल्याणी उनको तहखाने के दरवाज़े पर मिलती है । गौरी साथ है ।)

कल्याणी—तहखाने की चाभी किसके पास है ?

(दोनों चुप)

कल्याणी—बोलते क्यों नहीं ? तहखाने में तुमने किसी लड़की को छिपा रक्खा है ?

(दोनों चुप)

(कल्याणी तहखाने के द्वार से कान लगाकर, किसी के कराहने की आवाज़ सुनती है ।)

कल्याणी—(रज्जन से) बोलो, चाभी कहाँ है ? नहीं तो अभी मैं तुम दोनों को पिटवाती हूँ । पापी, अन्यायी, मेरे स्वामी

के सुख की राह में काँटे बिछा रहे हो ? जिस डाल पर बैठे हो, उसी को काट रहे हो ? घुन की तरह जिस काठ मे रहते हो, उसी के अंतस्तल को खोखला कर रहे हो !

(बसेनू आगे बढ़कर चाभी देता है। कल्याणी स्वयं ताला खोलती है। श्यामा और गौरी की सहायता से वह कुसुम को उठाकर अपने कमरे में ले जाती है।)

कल्याणी—(श्यामा से) सेठ अभी नहीं आये, कहाँ गये हैं, बैठक में पूछकर आओ।

(श्यामा पूछकर लौटती है।)

श्यामा—सेठ राजा के यहाँ एक दावत मे दोपहर ही को चले गये, तबसे नहीं आये।

(कल्याणी कुसुम के मुँह से कपड़ा निकालती है और मुँह पर पानी के छींटे डालकर उसे जगाती है। थोड़ी देर मे कुसुम जाग उठती है। कल्याणी उसे प्यार से गोद में बैठाकर अपने हाथ में कटोरा लेकर दूध पिलाती है।)

कल्याणी—हाय, स्त्री-जाति पर इतना अत्याचार ! (गौरी से) गौरी बेटी, तुमने कुसुम की लाज रख ली और मेरे कुल के धर्म की भी रक्षा तुमने की। बेटी, मैं तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं। अब कुसुम का सारा भार मुझको अपने ऊपर लेना पड़ेगा, तुम मेरी सहायता करो।

गौरी—(कृतज्ञता का भाव प्रकट करती हुई) कल्याणी माँ, मैं तो तुम्हारी पुत्री हूँ; मेरा तुम पर क्या ऋण हो सकता है

माँ; मेरा जीवन तो तुम्हारे जीवन की एक साधारण किरण है। मुझे जो आदेश करोगी, उसे मैं प्राणपण से पूरा करूँगी।

कल्याणी—ऐसी ही आशा है तुमसे बेटी! अच्छा, तो अब देर करना ठीक न होगा। तुम आज रात ही मे कुसुम को लेकर यहाँ से निकल जाओ। मै आचार्याजी के नाम एक पत्र लिखकर दूँगी। उसके अनुसार वे कुसुम को कन्या-विद्यालय मे रखकर शिक्षा देती रहेंगी; शिक्षिता होजाने पर फिर कुसुम की जैसी इच्छा होगी वैसा किया जायगा। तुम दोनों के साथ मैं अपने दो विश्वासपात्र नौकर भेजूँगी; वे तुम्हारे राह-खर्च और कुसुम की शिक्षा के लिये कुछ रुपये आचार्याजी को देने के लिये साथ ले जायँगे। रात का सफर है बेटी, इसलिये तुम अपने भाई को भी साथ लेती जाओ। जाओ, बेटी देर न करो। मैं कुसुम को खिला-पिलाकर, कपड़े पहनाकर, शीघ्र ही गुप्त मार्ग से भेजती हूँ।

(गौरी प्रणाम करके जाती है।)

तीसरा दृश्य

समय—रात के आठ बजे।

स्थान—मनोहरलाल का घर।

(मनोहरलाल मकान के सामने सवारी से उतरता है। बसेनू और रज्जन पास आकर सलाम करते हैं।)

मनोहर०—हरिबल्लभ का क़र्ज़ वसूल कर लाये ?

बसेनू—हरिबल्लभ के घर मे था ही क्या ? कुसुम को ले आया हूँ। कुसुम फूली हुई लता की तरह सुन्दर है।

मनोहर०—कहाँ है ? उसे लाते समय किसी ने रोक-टोक नहीं की ?

रञ्जन—उस महल्लेवाले बड़े भले आदमी हैं। किसी ने अपना द्वार खोलकर झाँका भी नहीं कि कहाँ क्या होरहा है ? और आपका इक़बाल भी तो कोई चीज़ है हुज़ूर ! कौन चूँ कर सकता है ? हाँ, उस गौरी छोकरी ने कुछ शरारत की है।

मनोहर०—गौरी कौन ?

बसेनू—हरिबल्लभ के पड़ोस में रहनेवाली वही लड़की जो कहीं पढ़ती है। आजकल घर आई हुई है। उसने आकर घर के अंदर मालकिन से कहा। मालकिन कुसुम को तहख़ाने से निकालकर अपने कमरे में लेगई हैं।

मनोहर०—(भौं पर कुछ बल देकर) वही गौरी जिसको मेरे यहाँ से कुछ मदद दी जाती है ?

दोनों—हाँ हुज़ूर !

मनोहर०—कल याद दिलाना; उसकी मदद बंद कर दी जायगी। आवारा लड़कियों को पढ़ाकर हम अपना शत्रु तैयार कर रहे हैं।

दोनों—बहुत अच्छा, सरकार !

(मनोहरलाल का मकान के अन्दर आना और कल्याणी के कमरे में प्रवेश। कल्याणी मुँह ढककर बिछौने पर पड़ी रो रही है।)

मनोहर०—प्रेमा ! (मनोहरलाल कल्याणी को इसी नाम से पुकारता था।) आज क्या है, जो शाम ही से मुँह ढककर सो रही हो ?

(कल्याणी पलँग पर से उठकर नीचे फ़र्श पर बैठ जाती है। मनोहरलाल कोट और पगड़ी खूँटी से टाँगकर उसके पास बैठ जाता है।)

मनोहर०—मेरी रानी ! आज क्या बात हुई जो तुम इतनी उदास हो ? (ठुड्डी पकड़कर उसका मुँह अपनी ओर करता है।)

(कल्याणी की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है; वह मनोहरलाल की गोद में सिर डालकर सिसक-सिसककर रोने लगती है।)

मनोहर०—मेरी प्यारी लक्ष्मी ! मैं अधिक देर तक तुमको दुःखी नहीं देख सकता। बोलो, सच-सच बोलो। मुझसे कोई अपराध हुआ है ?

कल्याणी—(सिर उठाकर, प्रियतम की ओर सजल नेत्रों से देखती हुई) हाँ।

मनोहर०—(ज़रा उत्तेजित स्वर में) क्या ?

कल्याणी—हरिबल्लभ की कन्या को उसकी विधवा माता की गोद से छीन लाने की आज्ञा तुमने दी थी ?

मनोहर०—(ज़रा दृढ़ता से) हाँ।

कल्याणी—क्यों ?

मनोहर०—क्योंकि हरिबल्लभ मेरा क़र्ज़ अदा किये बिना ही मर गया।

कल्याणी—कितना क़र्ज़ था ?

मनोहर०—पचास रुपये

कल्याणी—क्या एक अनाथ कन्या की लाज और अपने कुल की मर्यादा का मूल्य पचास रुपये से भी कम है ?

मनोहर०—(कुछ क्रुद्ध होकर) कम हो या अधिक, इस विवाद में पड़ने को तुम्हें क्यों ज़रूरत हुई ? तुम्हारे किसी काम में तो मैं दख़ल नहीं देता हूँ। दस-बारह बरस तुम्हें आये हुये, तब से तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं दूसरों के पुत्रों और कन्याओं के पढ़ाने में हर महीने कई सौ रुपये देता रहा हूँ। अगर क़र्ज़ न वसूल किये जायँ, तो ये रुपये कहाँ से आयेंगे ?

कल्याणी—(कुछ उत्तेजित स्वर में) अगर ये रुपये पाप ही की कमाई से आते हैं, तो यह पुण्य बंद कर दीजिये।

मनोहर०—(क्षुब्ध होकर) तुम क़र्ज़ के वसूल करने को पाप की कमाई क्यों कहती हो ? मैं किसी पर डाका डालता हूँ ? या चोरी करता हूँ ? हरिबल्लभ को जब-जब ज़रूरत पड़ती थी, वह ले जाता था। मैंने इसमें क्या अपराध किया था ?

कल्याणी—पर कुसुम ने तुम्हारा क्या अपराध किया था ?

मनोहर०—कुसुम उसकी कन्या है। बाप का क़र्ज़ उसके लड़कों से न वसूल किया जायगा, तो किससे किया जायगा ?

कल्याणी—तो तुम उसकी स्त्री या लड़के को पकड़ मँगाते।

मनोहर०—(खिझकर) यह मेरी समझ मे नहीं आता कि तुम इस झगड़े में क्यों पड़ रही हो?

कल्याणी—प्राणेश्वर! मेरे हृदय के एकमात्र देवता! केवल आपके कल्याण के लिये। घर में अधर्म का प्रवेश होगा, तो सुख और शान्ति चले जायँगे।

मनोहर०—चले जाने दो सुख और शान्ति को। मैं पैसे से बहुत-सा सुख और शान्ति ख़रीद लूँगा। धर्म-अधर्म के पचड़े में तुम मत पड़ो। सुख से खाओ-पिओ, सोओ। तुमने ऊँचे दरजे तक शिक्षा पाई है। इसीसे आकर्षित होकर मैंने तुम्हारे साथ विवाह किया था। इस शिक्षा से हमेशा नये-नये सुखों की कल्पना किया करो और उसे प्राप्त करके मनुष्य-जीवन को सार्थक करती रहो। तुम अपनी शिक्षा को अपने सुख के मार्ग मे कंटक क्यो बनाती हो?

कल्याणी—प्रियतम, मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे पत्नीरूप से ग्रहण किया; मैं अबतक आपके साथ संसार मे अद्वितीय सुख का अनुभव भी करती रही हूँ; पर जीवन का सच्चा सुख अधर्म से नहीं प्राप्त हो सकता, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। नाथ, तुम दूसरे की कन्या को अपनी ही कन्या के समान समझो।

मनोहर०—तुमको भी?

कल्याणी—(उत्तर पर ध्यान न देकर) हमारे एक ही सन्तान है। माता-पिता के पुण्य ही से सन्तान का कल्याण होता है। तुम मेरे लिये न सही, अशोक के लिये ही पाप के मार्ग से अपना पैर खींच लो, मेरे स्वामी !

मनोहर०—मैं पाप के रास्ते पर नहीं जा रहा हूँ प्रेमा, व्यर्थ कलह करके घर मे दु:ख का बीज न बोओ। अथवा तुम यही मान लो कि मैं कीचड़ में उतर चुका हूँ, तो अब तुम्हारे निकाले निकल भी नही सकता। मुझे कीचड़ में लथपथ होजाने दो।

कल्याणी—(आँखों मे आँसू भरकर) मेरे जीते-जी ?

मनोहर०—हाँ; प्रेमा, मुझे कोई रोक नहीं सकता। बताओ, कुसुम कहाँ है ?

कल्याणी—(कुछ कुपित होकर) क्या करोगे कुसुम को ? कुसुम जहाँ से आई थी वहीं गई।

मनोहर०—(सक्रोध उठकर) अच्छा, तो तुम मेरा सुख छीनती हो, तो मैं भी तुम्हारा सुख छीनता हूँ। अब मैं आज से तुम से अलग रहा करूँगा।

कल्याणी—(मनोहरलाल के गले मे हाथ डालकर) ऐसा न करो, मेरे नाथ ! मेरा सुख तो तुम्हारे ही सुख में है।

(मनोहरलाल उठकर जाने लगता है; कल्याणी उसे पकड़ती है। मनोहरलाल उसे धक्का देकर गिरा देता है और कोट और पगड़ी पहनकर कमरे से बाहर चला जाता है। कल्याणी फ़र्श पर पड़ी रहती है।)

चौथा दृश्य

समय—रात के नौ बजे।

स्थान—गौरी का घर।

(गौरी का प्रवेश)

गौरी—माँ, जयंत कहाँ गया ?

माँ—अभी यहीं तो बैठा था, बेटी !

(गौरी ढूँढ़ती है; फिर जयत के घर में जाकर ढूँढ़ती और धीरे-धीरे बुलाती है, पर वह नहीं मिलता तो लौटकर माँ के पास आती है।)

गौरी—माँ, जयंत तो कहीं चला गया। उसे तुम ढूँढ़कर अपने पास रखना। माँ, कुसुम मिल गई। कल्याणी माँ ने उसे कन्या-विद्यालय में आचार्याजी को सौंप आने के लिये मेरे सुपुर्द किया है। वे उसकी शिक्षा का कुल खर्च देंगी। मैं आज रात को भइया को साथ लेकर अपने विद्यालय को जारही हूँ। कल्याणी माँ ने कितनी कन्याओं को शिक्षा दिलाकर सुखी किया है, माँ। वे तो साक्षात् लक्ष्मी हैं।

माँ—कुसुम मिल गई बेटी ! मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं जयंत की खोज करूँगी। वह यहीं कहीं होगा। सच है बेटी, कल्याणी अपनी शिक्षा और धन का जैसा सुन्दर उपयोग कर रही है, वह प्रत्येक स्त्री के लिये आदर्श है। बेटी ! तुम खाना तो खा लो।

गौरी—माँ, खाना रास्ते मे खा लूँगी। भइया तैयार होकर यह आ रहे हैं। माँ, अब हमें देर नहीं करनी चाहिये।

(दोनों भाई-बहन माँ के पैर छूते है और जाते हैं।)

गौरी—(द्वार तक पहुँचकर) जयंत की ख़बर लेना, माँ।

माँ—अच्छा, बेटी! जल्दी लौटना।

(राह में)

गौरी—अहा, आज मुझे कितना हर्ष हो रहा है, मैं उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। मैंने कुसुम बहन का उद्धार किया, कल्याणी माँ के मुँह से यह सुनकर मैं हृदय में एक अद्भुत प्रकार के सुख का अनुभव कर रही हूँ। जो सत्पुरुष एक समाज का उद्धार करते हैं, या एक देश का उद्धार करते हैं, उनके हर्ष का तो मैं अनुमान भी नहीं कर सकती। दुखियो की, दलितों की, अत्याचार-पीड़ितों की सेवा मे कितना सुख है! कितना आनन्द है! मानो मैं इस सेवा के अंदर से ईश्वर को झाँक रही हूँ। हे ईश्वर, तुम मुझे सदा दीन-दुखियो की सेवा का सुख सौंपना। इस सुख की प्राप्ति में मैं अपना जीवन लगा दूँ, ऐसी भावना मेरे मन में सदा जगाते रहना।

(चलते-चलते गाती है)

ना मन्दिर में ना मसजिद में ना गिरजे के आसपास में।
ना पर्वत पर ना नदियों में ना घर बैठे ना प्रवास में।

ना कुञ्जों में ना उपवन के शांति-भवन या सुख-निवास में।
ना गाने में ना बाने में ना आँसू में नहीं हास में।
ना छन्दों में ना प्रबन्ध में अलंकार ना अनुप्रास में।
खोज ले कोई राम मिलेंगे दीन-जनों की भूख-प्यास में॥

पाँचवाँ दृश्य

समय—प्रभात-काल।

स्थान—पंडित देवदत्त का घर।

(पंडित देवदत्त प्रभात-वेला में उठकर स्नान के लिये घर से बाहर आते हैं। दरवाज़े पर एक लड़का गहरी नींद में पड़ा मिलता है।)

देवदत्त—हैं! यह कौन है? जान पड़ता है, कोई घरबार-विहीन अनाथ बालक है, कहीं शरण नहीं मिली तो यहीं पड़कर सो रहा है। हाय, यह किसके घर का दीपक है। किस ग़रीब की गाँठ का धन है। हाय! संसार की कैसी विचित्र गति है, कितने ही दुष्ट दुराचारी लोग इस समय मख़मली गद्दे पर ख़ुर्राटें ले रहे होंगे और यह बच्चा कड़ी ज़मीन पर पड़ा है। भगवान्, पृथ्वी पर यह अन्याय कब तक चलेगा?

(लड़के को ग़ौर से देखता है।)

लड़का बड़ा सुन्दर है। गहरी नींद में सो रहा है। इसके वस्त्र बहुत पुराने और फटे हुये हैं। अरे, इसकी पीठ पर का वस्त्र तो रक्त से चिपक गया है। जान पड़ता है किसी ने इसे

मारा है। हाय ! संसार मे ऐसे भी कठोर-हृदय नराधम हैं, जो बच्चों पर भी हाथ चलाते हैं।

(देवदत्त बच्चे को जगाता है। बच्चा उठ बैठता है और इधर-उधर देखने लगता है।)

देवदत्त—बेटा, तुम किसके लड़के हो ?

लड़का—मैं हरिवल्लभ का लड़का हूँ।

देवदत्त—(चौंककर मन ही मन) अरे, हरिवल्लभ का लड़का ! हरिवल्लभ और उसके परिवार की कथा तो कल दोपहर से जंगल की आग की तरह गाँव भर में घर-घर फैल रही है। जैसा अंधेर सोनपुर मे होरहा है, वैसा अंधेर तो कभी कहीं सुना भी नहीं गया। राजा धनिकों के हाथ की कठपुतली बन रहा है। उसके सब कर्मचारी पैसेवालों से रिश्वतें खा-खाकर उन्हें मनमानी करने से रोक नहीं सकते; गाँव में किसी सुन्दर बहू-बेटी का धर्म रहना कठिन होरहा है। धनवानों के अत्याचार से प्रजा काँप उठी है। कैसे परिताप की बात है कि दिन-दहाड़े दुष्ट लोग एक कन्या का हरण करें और महल्ले के लोग घर से बाहर झाँकें तक न ! लोगों में प्राण रहा ही नहीं; बिलकुल मरघट की-सी कायरता छारही है।

देवदत्त—(लड़के से) बेटा ! तुम्हारा नाम क्या है ?

लड़का—जयंत।

देवदत्त—कितना सुन्दर नाम है ! तुम घर से यहाँ कैसे आगये बेटा !

जयत—मैं गौरी बहन के घर में था। रात में मुझे माँ की मोह लगी। मैं चुपचाप गौरी बहन के घर से निकलकर अपने घर में गया। वहाँ कोई न था। माँ, माँ कहकर कई बार पुकारा; कोई न बोला। कुसुम बहन को कुछ लोग दोपहर ही को ज़बरदस्ती पकड़कर उठा ले गये थे। मैं घर से निकलकर अँधेरे में रास्ता भूल गया।

देवदत्त—तुम्हारी पीठ पर यह घाव कैसे लगा, जयंत!

जयंत—मैं बाज़ार में आ रहा था। चाय की दूकान पर कुछ लोग बैठे खा-पी रहे थे। वे कुत्ते के लिये रोटी के कुछ टुकड़े सड़क पर फेंक रहे थे। मुझे बड़ी भूख लगी थी; मैंने भी एक टुकड़ा उठा लिया। इसी पर एक आदमी ने दौड़कर मुझे एक बेत मारा।

देवदत्त—वह कौन आदमी था, बेटा?

जयंत—मैं उसको पहचानता हूँ। वही तो कुसुम बहन को उठा ले गया था। मैंने उसके हाथ में दाँत काट लिया था। वह पट्टी बाँधे भी था।

देवदत्त—तुमको उसने नहीं पहचाना?

जयंत—उसके साथी ने पहचाना और कहा—इसी साले ने तुम्हारे दाँत काटा था। ले चलकर इस साले को कहीं खतम कर दो।

देवदत्त—(क्रोध से दाँत पीसकर) फिर?

जयंत—मैं अँधेरे में छिप गया और गलियो मे भागकर यहाँ पहुँचा। बेंत की चोट से पीड़ा बहुत हो रही थी। यहीं गिर पड़ा और फिर नींद आगई।

देवदत्त—(आपही आप) मेरे अकेले के प्राण देने से ग़रीबों पर होनेवाले अत्याचार मिट सकते, तो मैं अभी मरने को तैयार था; पर मन मे जो आज क्रोध उत्पन्न हुआ है, उसे व्यर्थ क्यों जाने दूँ ? मेरे कोई संतान तो है नही, घर मे हम स्त्री-पुरुष दो ही हैं। इस बच्चे को हम पाल क्यो न लें ? और इसे ऊँचे दरजे की शिक्षा दिलाकर इसी को अत्याचार और अत्याचारियों के दमन के लिये क्यों न तैयार करें ? (बालक से) बेटा ! अब तुम कहाँ जाओगे ?

जयंत—पता नहीं।

देवदत्त—इधर-उधर भटकते फिरोगे तो शायद वह दुष्ट आदमी तुमको फिर मिल जाय और तुम्हें मारे-पीटे।

जयंत—अब की बार वह मिलेगा, तो मैं उसके दूसरे हाथ को भी काट खाऊँगा, चाहे वह बाद को मुझे मार ही डाले। मुझको उसने कुत्ते से भी नीच समझा।

देवदत्त—(आपही आप) अन्दर आग है, इसे फूँक मार-मारकर सुलगाना पड़ेगा। (प्रकट) बेटा ! तुम मेरे घर मे रहोगे ?

(जयंत देवदत्त के मुँह की ओर टकटकी लगा देता है। उसकी कमल ऐसी बड़ी-बड़ी आँखों में से आँसू की दो बूँदें ढुलक पड़ती हैं। देवदत्त उसे उठाकर गोद में ले लेता है।)

देवदत्त—चलो बेटा, अंदर चलो। आज से तुम मेरे पुत्र हुये।

(देवदत्त जयंत को गोद में लिये हुये अंदर ले जाता है।)

देवदत्त—(अपनी स्त्री से) कमला, इधर देखो, आज भगवान् ने मुझे एक पुत्र दिया है।

कमला—क्यों ताना मारते हो?

देवदत्त—कोठरी से बाहर आकर देखो तो सही। कैसा सुन्दर बालक है!

(कमला बाहर आती है)

देवदत्त—तुम रातभर बसन्ती का हाल सुनकर रोती रही न? यह उसी का बालक है।

(कमला की आँखें भर आती हैं। वह आगे बढ़कर जयंत को देवदत्त की गोद से उतार लेती है। फिर उसके मुँह पर, सिर पर हाथ फेरती है)।

कमला—कैसा सुन्दर बालक है, जैसे राजकुमार। इसकी बहन कुसुम इससे भी सुन्दर है। हाय! उसकी सुन्दरता ही उसके नाश का कारण हुई।

देवदत्त—जगत् मे अभी तक किसी भी मनोहर पदार्थ से ऐसा बुरा परिणाम नहीं निकला, जैसा स्त्रियों के सौन्दर्य से।

कमला—इसको पाल लो। यह हमारा पुत्र है। हमारे घर का दीपक है।

देवदत्त—नहीं; सोनपुर का सूर्य है, ऐसा कहो। मैं इसे पढ़ा-लिखाकर ग़रीबों की रक्षा के लिये तैयार करूँगा। भगवान्

ने हमें कोई संतान नहीं दी। अब इसी की सँभाल में, इसी की सेवा में, मेरे दिन बीतेंगे। यही मेरी पूजा, यही मेरा पाठ; इसी के लिये कमाऊँगा, इसी के लिये जीऊँगा। समझी ?

कमला—(प्रसन्न होकर) समझी।

देवदत्त—आज सबेरे ही सबेरे एक पुत्र और उत्पन्न हुआ है।

कमला—तुम्हारे ?

देवदत्त—हाँ, मेरे।

कमला—अब कुछ दिनों मे पुरुष लोग ही बच्चे उत्पन्न करने लगेगे। (जिज्ञासा से) अच्छा, फिर वह पुत्र कहाँ गया ?

देवदत्त—उसका नाम है क्रोध। वह इसी के साथ जीवित है, पर दिखाई नहीं पड़ता है। वह मेरे हृदय में खेल रहा है। वही उसका क्रीड़ा-क्षेत्र है। जिस दिन यह बालक ग़रीबों की ढाल होकर खड़ा होगा और अत्याचारियों को दमन करके, फिर न्याय और मर्यादा की रक्षा करके, सुख की साँस लेगा, उसी दिन उस बालक का अंत हो जायगा। समझी ?

कमला—ख़ूब समझी। पर इसे यहाँ रखना अच्छा नहीं होगा।

देवदत्त—अभी दो-चार दिन तो इसे छिपाकर रक्खो। इसका घाव अच्छा हो जाय और शरीर में कुछ बल आ जाय तब मैं इसे दूर—बहुत दूर ले जाकर अपने एक मित्र के आश्रम

में छोड़ आऊँगा। उनको हर महीने ख़र्च भेजा करूँगा। वे मेरी इच्छा के अनुसार इसकी शिक्षा का प्रबंध करेंगे। साल में हम तुम एक-दो बार इसे देखने भी चला करेंगे। समझी ?

कमला—(प्रसन्न होकर) समझी । मैं आज कल्याणी के पास जाना चाहती हूँ। हम दोनों ने एक ही कन्या-विद्यालय में शिक्षा पाई थी। उसको कहूँगी कि उसके स्वामी क्या अनर्थ कर रहे हैं। वह उन्हें रोकती क्यों नही ?

देवदत्त—जाना हो तो जाओ; पर परिणाम अच्छा न होगा। मनोहरलाल अब इतने पाप-पंक में फँस चुका है कि कल्याणी के उबारे नहीं उबर सकता। उसके उद्धार का एक-मात्र उपाय यही जयंत है।

कमला—पर जयंत के तैयार होने तक तो वह कितने ग़रीबों का सत्यानाश कर चुकेगा।

देवदत्त—यह ठीक है, पर हमें उतना ही भार उठाना चाहिये, जितना हम उठा सकें। सारा उद्योग उत्तम परिणाम ही को लक्ष्य मे रखकर करना चाहिये। समय की चिन्ता करने से जल्दबाज़ी होगी और हमारा उद्योग लक्ष्य-भ्रष्ट हो जायगा। अत्याचार संसार में हमेशा होते आये हैं और आगे भी होंगे। साथ ही उनके रोकने के प्रयत्न भी होते रहते हैं। अत्याचार जितना ही तेज़ गति से चलता है, उतना ही शीघ्र वह नाश के निकट पहुँचता

जाता है। मान लिया कि तुमने जाकर कल्याणी को कहा, और कल्याणी तुम्हारी बातो में आगई; उसने मनोहरलाल को कहा। मनोहरलाल यदि अधर्म से न हट सका तो पति-पत्नी में सदा के लिये वैमनस्य हो जायगा, जो तुम्हें अभीष्ट नहीं।

कमला—बिलकुल नहीं।

देवदत्त—और यदि कल्याणी ने तुम्हारी बात अनसुनी कर दी, तो तुम उसके लिये कोई अच्छे विचार लेकर थोड़े ही आओगी ?

कमला—उसके लिये जो अच्छे विचार अब हैं, उन्हे भी गँवा आऊँगी।

देवदत्त—तब तो घाटे मे तुम्हीं रहोगी। इससे तो अच्छा यह है कि हम लोग अब से सारा समय जयंत के लिये दें; यह शिक्षा पाये और हम दोनों अपनी आय मे से अधिक से अधिक बचाकर इसका व्यय चलायें। अपने गाँव, अपने समाज, अपने देश की सेवा हम इस प्रकार करें। इस बालक के इतने सुन्दर नेत्र क्या इस बात के साक्षी नहीं हैं कि इसके हृदय को ईश्वर ने अपना अधिक अंश सौंपा है ? कमला, बातों में पड़ने की आवश्यकता नहीं। आज का दिन बड़ा शुभ है। चलो, ग़रीबों पर होनेवाले अत्याचारों के दूर करने का श्रीगणेश हम आज ही से करें।

कमला—(जयन्त का मुँह चूमकर) आओ, बेटा ! अपने

देश मे चन्द्रमा की तरह उदय हो और निर्जीव लोगो पर अमृत की वर्षा करके उन्हे जीवन प्रदान करो।

देवदत्त—चलो !बेटा, सूर्य की तरह प्रकाशित होकर अत्याचाररूपी अधकार का नाश करो।

(कमला और देवदत्त जयन्त को कोठरी के अन्दर ले जाते हैं)।

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य

(सात वर्ष बाद)

समय—प्रातःकाल ।

स्थान—कन्याओं का आश्रम ।

(कुसुम आश्रम की खिडकी से सूर्योदय देख रही है)

कुसुम—अहा, प्रातःकाल कितना सुन्दर होता है ! पक्षी चहचहा रहे हैं, फूल खिल रहे है, भ्रमर गुंजार कर रहे हैं, वायु फूलों से सुगंध ले-लेकर चारोंओर बाँट रही है, पृथ्वी दूब की थाली में मोती लेकर सूर्य का स्वागत करने।।को उत्सुक है; सृष्टि आनद से हँस रही है । (आकाश की ओर दृष्टि उठाकर एक गहरी साँस लेकर) मेरे जीवन का प्रभात भी आ रहा है । मेरे खिलने का समय आगया । कल आचार्याजी कह रही थी कि शीघ्र ही तुम्हे ससार में जाना पड़ेगा । ओह, संसार कितना भयानक है ! वहाँ आदमी आदमी को खाये जा रहा

है; सब लोग सर्वनाश की ओर डंका बजाकर हँसते हुये दौड़े जा रहे हैं। उसी छल-कपट, दंभ, अत्याचार, विषाद और निराशा के क्रीड़ास्थल मे मुझे आचार्याजी दुःखों से लड़ने के लिये भेज रही है। उन्होंने मुझे दुःखों को परास्त करने की शक्ति दी है। मै जाऊँगी; दीन-दुखियों की सेवा ही मे अपना जीवन बिताऊँगी। हाय, मेरे माता-पिता कैसे दुःखी थे! मेरी ही चिता में उनके प्राण गये; उनकी प्रतिष्ठा गई। न जाने देश में कितनी कन्यायें मेरी तरह अपने माता-पिता की मृत्यु का कारण होरही होंगी। धनिकों की तृप्ति के लिये कितनी बहनें, कितने भाई, कितनी मातायें, कितने पिता अपना धर्म, अपना मान और अपना स्वर्ग गँवा रहे होंगे। मुझे मनुष्य-जाति मे सदाचरण की रक्षा के लिये लड़ना होगा। कल कल्याणी माँ का पत्र आचार्याजी दिखला रही थी, जिसमे लिखा था कि कुसुम की शिक्षा पूरी हो चुकी हो, तो उसे देश के दीन-दुखियों की सेवा के लिये संसार में भेज दो। कल्याणी माँ साक्षात् देवी हैं। देश के बच्चों पर उनकी कितनी ममता है! सात वर्ष मुझे आश्रम मे आये होगये; तब से उनके दर्शन न हुये। वे प्रत्येक मास मेरा हाल आचार्याजी से पूछती रहती है, मेरे लिये भोजन, वस्त्र और पुस्तकें भेजती रहती हैं। मैं समझती हूँ वे संसार मे सब से अधिक मुझे ही प्यार करती हैं। उनकी आज्ञा मै नहीं टालूँगी। मैं संसार मे जाऊँगी और जीवन की प्रत्येक साँस दीन-दुखियो की सेवा मे लगा दूँगी, ताकि कल्याणी

माँ मुझे प्यार से गोद मे बैठा ले। हाय, मेरा प्यारा भाई जयंत कहाँ है ? है भी या नहीं ? आजतक मुझे पता न चला। मैंने कई बार आचार्याजी को कहा कि कल्याणी माँ को लिखकर जयंत का हाल पूछ लीजिये। आचार्याजी सदा यह कहकर टालती रहीं कि कल्याणी माँ नहीं चाहतीं कि तुम्हारा कोई पत्र उनके पास जाय। यहाँ तक कि वे तुमसे मिलना भी नहीं चाहतीं। मेरा नाम भी आश्रम मे कुसुम के बदले मृदुला उन्हीं की आज्ञा से रख दिया गया था। मै इस पहेली का अर्थ नहीं समझती; फिर भी कल्याणी माँ और आचार्याजी की जो आज्ञा होगी, मैं उसका अक्षर-अक्षर पालन करूँगी।

(एक सहेली का प्रवेश)

सहेली—मृदुला बहन ! तुमको आचार्याजी बुला रही है।

कुसुम—कहाँ हैं ?

सहेली—लता-निकेतन में। कोई रानी आई हैं। उनके साथ उनकी राजकुमारी भी है।

कुसुम—रानी और राजकुमारी से मेरा क्या प्रयोजन ! खैर; चलो, आचार्याजी के पास तो चलती ही हूँ।

(लता-निकेतन में आचार्याजी एक रानी और राजकुमारी से खड़ी-खड़ी बाते कर रही है। कुसुम का प्रवेश)

आचार्या—मृदुला !

कुसुम—हाँ माताजी !

आचार्या—(रानी की तरफ़ संकेत करके) ये सोनपुर की रानीजी हैं।

(सोनपुर का नाम सुनकर कुसुम काँप उठती है। वह प्रणाम करती है।)

आचार्या—(राजकुमारी की तरफ संकेत करके) यह इनकी पुत्री हैं। ये अपनी पुत्री के लिये एक सहेली चाहती हैं, बेटी! मैं तुम्हें इनके साथ भेजना चाहती हूँ। जाकर कुछ दिन राजकुमारी के साथ रहो। राजकुमारी से मैं कुछ देर से बाते कर रही हूँ; इनका स्वभाव बहुत अच्छा जान पड़ता है। राजमहल भी तुम्हारी शिक्षा के लिये एक आवश्यक स्थान है, बेटी!

कुसुम—माताजी, मैं तो दीन-दुखियों की सेवा में अपना जीवन अर्पण करना चाहती हूँ।

आचार्या—बेटी, राजकुमारी को साथ लेकर तुम दीन-दुखियो की सेवा और भी अधिक सफलता के साथ कर सकोगी।

(कुसुम सिर झुका लेती है)

रानी—(कुसुम से) बेटी, राजमहल मे चलकर तुम देखोगी कि अच्छी शिक्षा के बिना हमारी दशा दीन-दुखियों से कम शोचनीय नहीं है। राजमहल का सुख हमको खाये जा रहा है। अपनी एकमात्र संतान पद्मावती को मैं ऐसी शिक्षा दिलाना चाहती हूँ जिससे यह अपनी आत्मा को पतन की ओर जाने से रोक सके। बेटी! आचार्याजी ने तुम्हारी

बड़ी प्रशंसा की है। मै भी तुम्हारे व्यवहार में नम्रता, हृदय में दीन-दुखियों के प्रति दया और नेत्रों में अपार करुणा का भाव देखकर आचार्याजी के प्रति कृतज्ञता के भाव में डूब गई हूँ कि उन्होंने दया करके मेरी पद्मावती के लिये तुम्हारी जैसी देवी चुन दी। तुम बेटी, मेरे साथ चलो। थोड़े ही दिनों में तुम देख लोगी कि मैं पद्मावती से कम प्यार तुम्हारा नहीं करूँगी।

कुसुम—(आचार्याजी से) मैं आप से कुछ बातें एकान्त में करना चाहती हूँ।

(रानी और राजकुमारी को वहीं छोड़कर आचार्या कुसुम के साथ कुछ दूर जाती हैं ?)

कुसुम—आप जानती हैं, सोनपुर से मेरा क्या सम्बन्ध है ?

आचार्या—अच्छी तरह जानती हूँ और जानकर ही तुमको आदेश करती हूँ कि तुम्हारी सेवा का मुख्य केन्द्र सोनपुर ही है। वहाँ इतना अत्याचार बढ़ रहा है, जिसकी कुछ सीमा नहीं। कल्याणी को उसके पति ने त्याग दिया है। वह सब प्रकार के दुराचारों में पूर्णरूप से लिप्त होगया है। कल्याणी बड़े संकट में अपने दिन काट रही है। फिर भी हर महीने अपने गहने बेंचकर तुम्हारे लिये खर्च भेजा करती है।

(कुसुम की आखों से आँसू ढुलक पड़ते हैं)

तुम सोनपुर जाकर राजकुमारी के साथ रहो। राजकुमारी अपने माता-पिता की एकमात्र संतान है। जिसके साथ इसका

विवाह होगा, वही सोनपुर का भावी राजा होगा। राजकुमारी पर तुम अपना प्रभाव रख सकोगी तो उसके द्वारा कभी राज में होनेवाले अत्याचार भी कम करने मे तुम समर्थ होगी। जहाँ से अत्याचार प्रारंभ होता है, वहीं से यदि उसके प्रतीकार का उपाय किया जायगा तो उसमे जल्दी सफलता प्राप्त होगी। पर एक बात का ध्यान हमेशा रखना कि अपना पूर्व परिचय कल्याणी से पूछे बिना किसी को न देना। कल्याणी से भी मिलने की आतुरता न करना। तुमको देखने की अपेक्षा तुम्हारे कार्यों की कीर्त्ति को वह अधिक प्रिय समझेगी, ऐसा उसने लिखा भी है। ईश्वर करे, हमारे आश्रम की सब कन्यायें कल्याणी जैसी हों।

(कुसुम का हृदय भर आता है)

आचार्या—अच्छा तो बेटी, तुम तैयार हो जाओ। रानी-जी को देरी होरही है। जाओ बेटी, दुःख से जलता हुआ संसार तुम्हारी सेवा की शीतलता के लिये छटपटा रहा है।

(कुसुम आचार्याजी के पैरों पर सिर रख देती है। आचार्याजी उसे उठाकर छाती से लगा लेती है। दोनों रानी के पास आती हैं)

आचार्या—(रानी से) रानीजी, मृदुला को मैं आपके सिपुर्द करती हूँ। आप देखती हैं, संसार के वातावरण से कितना दूर रहकर यह पली है। इसे अनुभव न होने से आपके साथ शिष्टाचार मे कभी इससे कोई त्रुटि हो जाय तो क्षमा करती रहियेगा। (राजकुमारी से) राजपुत्री, मृदुला

तुम्हारी अच्छी सहेली होकर रहे, मैं यह आशीर्वाद देती हूँ।

(राजकुमारी आचार्या को प्रणाम करती है)

आचार्या—(कुसुम से) चलो, बेटी ! हम तुम्हे विदा कर आवें।

(आचार्या की आज्ञा से आश्रम की सब कन्यायें अहाते में एकत्र होती हैं)

आचार्या—(कुसुम से) मृदुला ! तुम जो चीजे आश्रम से साथ ले जाना चाहो, ले लो।

कुसुम—माताजी, आपके आशीर्वाद और अनत स्नेह के सिवा मैं और कुछ ले जाना नहीं चाहती। जो वस्त्र मैं पहने हूँ, उतने ही लेकर मै जाऊँगी, बाकी मेरी सब चीजे मेरी बहनों को बाँट दी जायँ।

आचार्या—(आश्रम की कन्याओं से) पुत्रियो ! मृदुला का आश्रम-जीवन आज समाप्त हो रहा है। अब यह संसार में दीन-दुखियों की सेवा के लिये जा रही है। सब इसे विदा करो।

कन्यायें—(गाती है)

जाओ, जाओ, सहेली ! जाओ।

दुख से दग्ध ताप से पीड़ित,
वह जग है चिंता से मूर्छित,
उस पर दया, प्रेम, करुणा के

सुधा वारि बरसाओ।
जाओ, जाओ, सहेली! जाओ॥
सुनकर चारु चरित्र तुम्हारे,
हों आनन्दित हृदय हमारे,
हम पायें सुख, तुम भूतल पर
कीर्ति-ध्वजा फहराओ।
जाओ, जाओ, सहेली! जाओ॥
अपना जीवन सफल बनाना,
हमको हे सखि! भूल न जाना,
कहती चलना, आओ मेरे
पद-चिन्हों पर आओ।
जाओ, जाओ, सहेली! जाओ॥

(कुसुम एक-एक करके सब सहेलियों से मिलती है, फिर आचार्या आगे चलती हैं, उनके पीछे रानी, राजकुमारी और कुसुम चलती हैं। कुसुम एक वृक्ष के पास रुक जाती है।)

कुसुम—माताजी, इस वृक्ष को मैंने लगाया था। इसकी सँभाल रखियेगा, यह सूख न जाय।

(वह वृक्ष को आलिंगन करती है और उसकी पत्ती का चुम्बन करती है। रानी के नेत्र भर आते है)

आचार्या—बेटी, आश्रम मे तुम्हारे बहुत-से स्मृति-चिह्न हैं; मैं सबकी रक्षा करूँगी। तुमने अपने सरल, पवित्र और

विनम्र स्वभाव से मेरे हृदय मे स्नेह का जो स्रोत खोल लिया था, उसे फिर शान्त करने मे बेटी ! मेरा कितना समय लगेगा, मैं अभी कह नहीं सकती।

(फाटक पर पहुँचकर कुसुम के सिर पर हाथ फेरती हुई।)

जाओ बेटी, अपने पवित्र चरित्र से संसार की मलिनता दूर करो; अपनी सेवा से दुःखों से सतप्त मनुष्य-समाज मे सुख और शान्ति की सृष्टि करो; अपनी उज्ज्वल कीर्ति से अपने बड़ों का सिर ऊँचा करो। जाओ बेटी, जाओ, आश्रम का स्मरण रखना; आज तुम्हारे वियोग में सभी आश्रमवासी दुःख का अनुभव कर रहे हैं।

(कुसुम आचार्या को प्रणाम करती है; उसके नेत्रों से अश्रु-प्रवाह जारी है। रानी और राजकुमारी आचार्या से विदा लेती है। कुसुम रानी के पीछे-पीछे राजकुमारी के साथ जाती है। चलते-चलते वह कई बार आश्रम की ओर देख लेती है)

दूसरा दृश्य

(दस वर्ष बाद)

समय—प्रातःकाल।

स्थान—महाविद्यालय।

(जयंत महाविद्यालय की एक कोठरी में टहल रहा है।)

जयंत—मेरी शिक्षा का समय अब पूरा होगया। अब मुझे

उस दु:ख-पीड़ित समाज में जाना है, जो मेरी राह देख रहा है। संसार एक विचित्र पहेली है। उसमें भले-बुरे दोनों तरह के जीव है। सोनपुर मे जहाँ अनेकों अर्थलोलुप धन-पिशाच हैं, वहाँ पंडित देवदत्त ऐसे परोपकार-परायण सद्गृहस्थ भी हैं, जिन्होंने आज दस वर्षों से मेरी शिक्षा के लिए अनेक कष्ट सहकर धन भेजा और मुझे पढ़ाया-लिखाया। कल वे आये थे और आचार्य के सामने मुझसे यह वचन लेकर मुझे अपने ऋण से उऋण कर गये कि मैं अपनी शिक्षा का सम्पूर्ण लाभ दीन-दुखियों को अर्पण कर दूँ। कैसी मनोहर भावना है! मुझ अनाथ बालक को पालकर, मुझे सैकड़ो मील दूर लाकर, शिक्षा दिलाकर, उन्होंने अपने स्वार्थ की एक भी बात नहीं सोची। उन्होंने यह नहीं सोचा कि मैं इस शिक्षा से धन कमाकर उनकी वृद्धावस्था की नाव खेऊँ! कैसी महान् आत्मा है! मनुष्य तो दूसरो की सेवाओ का एक प्रत्यक्ष परिणाम है। किसी ने जन्म दिया, किसी ने पालन-पोषण कर दिया, किसी ने अन्न उत्पन्न कर दिया, किसी ने वस्त्र बुन दिये, किसी ने शिक्षा दी, किसी ने धन दिया, इस प्रकार बहुतों की सेवायें इस शरीर के निर्माण में सफल हुई हैं। इस पर तो समस्त मानव-जाति का ऋण है। यदि मैं इस शरीर की सारी शक्तियों को मानव-जाति को फिर लौटा दूँ, तभी मैं ईश्वर और अपनी आत्मा के सामने सच्चा प्रमाणित होऊँगा। (यकायक सोचकर) आचार्य आज कृपा

करके मेरे स्थान पर ही मुझे आशीर्वाद देने आनेवाले हैं। वह आ रहे हैं।

(आचार्य का प्रवेश)

आचार्य—पुत्र जयंत !

जयत—(प्रणाम करके) हाँ, गुरुवर्य !

आचार्य—आज विद्यालय से तुम्हारे जाने का दिन है। अपने जीवन का लक्ष्य तो तुमने समझ ही लिया है।

जयंत—हाँ गुरुवर, दीन-दुखियों की सेवा करना।

आचार्य—दीन-दुखियों की सेवा तुम कैसे करोगे ?

जयंत—बुद्धि और बल दोनों से।

आचार्य—आवेश में आकर किसी शक्ति का दुरुपयोग न करना।

जयंत—स्वीकार है, गुरुवर !

आचार्य—तुम स्वप्न देखना जानते हो ?

जयंत—आपने मुझे स्वप्न को सत्य कर दिखाने की शिक्षा दी है, गुरुवर !

आचार्य—अच्छा पुत्र ! सब कार्य सर्वसाधारण के हित की कामना से प्रेम-पूर्वक करना। कठोर उपायों का अवलम्बन आवश्यकता पड़ने पर ले सकते हो; पर परिणाम की प्राप्ति पर हृदय को फिर पहले जैसा प्रेम-पूर्ण कर लेना। सेवा ही इस मनुष्य-जीवन की सार्थकता है। सेवा ही शिक्षा की महिमा है ; ऊँचे-ऊँचे विचार और धन का बल नहीं। सूर्य को

हम इसीसे आदर की दृष्टि से देखते हैं कि वह प्रकाश देता है; इसलिये नहीं कि बहुत ऊँचाई पर है।

जयंत—सत्य है, गुरुवर !

आचार्य—जाओ पुत्र ! जीवन-रण में विजय प्राप्त करो।

(जयंत प्रणाम करता है, आचार्य सिर पर हाथ फेरकर जाते हैं।)

जयंत—(आप ही आप) प्रेम-पूर्वक और आवश्यकता पड़ने पर कठोर उपायो से भी सर्वसाधारण के हित का काम करना, यह बड़ा जटिल विषय है। क्या कठोरता मे भी प्रेम रह सकता है ? (सोचकर) रह सकता है। जैसे वैद्य की कड़वी दवा मे और उच्छृङ्खल बालक को राह पर लाने के लिये पिता के थप्पड़ मे। (उत्साहित होकर) चलो जयत, संसार मे चलो। मेरी बड़ी लालसा है कि मेरे जीवन का एक-एक पल जनता के जीवन मे जाग उठे; प्रत्येक व्यक्ति के मन, वचन, कर्म, ध्यान, श्रवण और भाषण मे मेरा वास हो। मैं जनता के अन्दर माला मे तागे की तरह पिरो उठूँ। (उत्तेजित होकर) मुझे समाज में फैले हुये अत्याचारों से लड़ना है। मैं बारूद के ढेर मे अग्नि की तरह पहुँचूँ; समाज का एक-एक कण मेरी आग से प्रज्ज्वलित हो उठे। मुझे सूर्य अपने प्रचण्ड ताप से नहीं रोक सकता; क्योंकि कर्त्तव्य का छत्र मेरे सिर पर है। फूल अपनी मुसुकान से मुझे रास्ते मे नहीं ठहरा सकता; क्योंकि लाखो दीन-दुखियो के आँसू भरे नेत्र मेरी दृष्टि को इस प्रकार खींच रहे हैं, जैसे

मल्लाह नाव की रस्सी को। अग्नि अपनी ज्वाला से मुझे डरा नहीं सकती; क्योंकि मेरे अन्तर की ज्वाला उससे कहीं अधिक प्रचड है। पवन अपने कोमल स्पर्श से मुझे आलसी नही बना सकता; क्योंकि मै बहुत कठोर हूँ। क्या चन्द्रमा अपनी स्निग्ध चन्द्रिका मे मुझे बहका लेगा? कभी नहीं। मेरी आँखों का एक-एक कोना माँ और कुसुम के विषाद-पूर्ण चेहरे से भरा हुआ है; चन्द्रमा के लिये उसमे स्थान कहाँ है? पक्षियों का कलरव! दूर हो; मेरे कानों में उत्पीड़ित समाज का आर्त्तनाद प्रलयकाल के विक्षुब्ध समुद्र की तरह हाहाकार कर रहा है। वह देखो, वह देखो, स्वार्थियो के मायाजाल मे जकड़ा हुआ संसार मेरी ओर कैसी कातर दृष्टि से देख रहा है। वह देखो, रक्त चूसनेवाले मालदारों के चगुल मे पड़े हुये वे मजदूर मेरी भुजाओ का बल माँग रहे है। हाय, हाय, वे किसान अन्याय से पीड़ित होकर मुझे पुकार रहे हैं। मेरे पैर! मुझे वहाँ ले चलो। मेरे हृदय! तुम मुझे जलती हुई आग मे खड़े रखना, मैंने आज दस बरसो से तुम्हे वीरों की अनन्त कथाओ के झूले मे झुलाकर पाला-पोसा है। मेरे सिर! तुम पंडित देवदत्त जैसे सत्पुरुषो की धूलि को अपने ऊपर धारण करके गर्व से सीधे खड़े रहना। मेरी जीभ! तुम्हारे एक-एक शब्द से अत्याचारियो के मस्तिष्क की अभिमानिनी नसें काँप उठें। मेरे शब्द! तुम समाज के सुन्न हुये अंग में बिजली की तरह प्रवेश करो। चलो, चलो, जयत, तुम्हे संसार के दुःख, अत्याचार, छल, कपट, लड़ने के

लिये बुला रहे है। वह देखो, कुसुम की तरह हज़ारो बहने धनियो के इन्द्रिय-सुख की भट्ठी में झोंकी जा रही हैं। आता हूँ, कुसुम! आता हूँ। दस वर्ष पहले हृदय मे आग की एक चिनगारी पैदा हुई थी, मैने उसे बड़ी हिफाज़त से जिलाया है। अब वह धायँ-धायँ करके जल रही है। उसी मे सब अत्याचारियो को झोक दूँगा बहन! आता हूँ।

(जाता है)

तीसरा दृश्य

(छः महीने बाद)

समय—पहर भर दिन चढ़े।

स्थान—सोनपुर का चौक।

(एक डुग्गीवाले का प्रवेश)

डुग्गीवाला—दुःख और अत्याचार से पीड़ित लोगो! तुम्हारे लिये एक वीर युवक ने अपना जीवन-दान किया है। वह एक घंटे बाद चौक मे आकर तुम लोगो से मिलना चाहता है। उस समय सब लोग वहाँ एकत्र रहो।

(डुग्गीवाला घोषणा करता चला जाता है)

(लोगों की बड़ी भाड़ जमा है। सब लोग कौतूहल से इधर-उधर घूम रहे हैं और तरह-तरह की बाते कर रहे हैं। इतने मे एक ओर कुछ हलचल-सी दिखाई देती है। चौक के बीच में एक विशाल वृक्ष के चबूतरे पर एक युवक खड़ा होता है।)

एक आदमी—अहा ! यही दीन-दुखियों और अत्याचार-पीड़ितों की सहायता करने आया है !

दूसरा—कैसा दिव्य इसका रूप है ! यह तो कोई देवता है। इसके चेहरे से तो ज्योति निकल रही है।

तीसरा—कैसा सुन्दर शरीर इसने पाया है !

चौथा—इसके भुजदंड तो बड़े-बड़े कसरती पहलवानों से भी बलवान जान पड़ते हैं।

पाँचवाँ—इसको देखकर इस राज के दुष्ट और दुराचारी काँप उठेंगे।

छठा—ज़रा ध्यान से सुनो। वह कुछ कह रहा है।

(सन्नाटा)

युवक—हे ग़रीब श्रेणी के लोगो ! मैं आज छः महीने से तुम लोगों के अंदर हूँ। तुममे से शायद मुझे कोई न जानता होगा; पर मै तुम सबको जानता हूँ; क्योंकि मैं अब तक तुम लोगो को अच्छी तरह जानने ही का धधा करता रहा हूँ। मुझे विश्वास होगया है कि तुम लोग एक विचित्र प्रकार की ग़ुलामी मे इस तरह जकड़े हुये हो जो प्रतिक्षण तुम को सर्वनाश की ओर ले जा रही है। अन्याय और अत्याचार के भयंकर परिणामों को भोगते रहने पर भी तुम उनके कारणो को देख नहीं पाते हो; क्योंकि वे स्वार्थी धनियो के द्वारा इतनी दूर पर रक्खे गये हैं कि तुम्हारी साधारण दृष्टि वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकती और उन्होने पेट की चिन्ता मे

तुमको इतना उलझा रक्खा है कि तुमको दूसरी बात सोचने या सुनने-समझने का समय ही नहीं मिल सकता। साथ ही भाग्य का फेर बताकर उन्होंने तुम्हारे अन्दर की उत्तेजना-वाली आग भी बुझा दी है।

(भीड़ में से आवाज़ आती है)

आवाज़—सुनो, सुनो, अच्छी बातें कहता है।

मैं भी तुम्हारी तरह ग़रीब हूँ। ग़रीब होना पूर्वजन्म के किसी पाप का परिणाम नहीं है, जैसा तुमको स्वार्थी लोगों और उनके ख़ुशामदी कवियों और पंडितों ने समझा रक्खा है। ग़रीब होना ईश्वर की अपार कृपा का प्रत्यक्ष प्रमाण है; क्योंकि ग़रीब के लड़के को अपनी मनुष्यता के विकास का जितना लम्बा-चौड़ा मैदान मिलता है, उतना अमीर के लड़के को नहीं मिलता।

आवाज़—ठीक है।

अमीर के लड़के को पिता का कमाया हुआ धन मिलता है, साथही पैसे से किस प्रकार जीवन नष्ट किया जाता है, यह शिक्षा भी मिलती है।

आवाज़—बहुत ठीक, हम ख़ूब समझ रहे हैं।

धनी लोग यदि अपने ही को नष्ट कर लें तो किसी हद तक सहा भी जा सकता है; क्योंकि उनको अपने शरीर पर पूरा अधिकार है; पर अपना सुख वे ग़रीबों को पैसा देकर

ख़रीदते हैं, स्वयं उत्पन्न नहीं करते। उनके लिये कब तक ग़रीब लोग सुख उत्पन्न करते रहेंगे ?

आवाज़—बोलते चलो; तुम्हारी बातें बड़ी प्रिय लग रही हैं।

किसान कितनी मेहनत करता है; पर धनवान् गेहूँ खाते है, वह छिलका भी नहीं पाता। मज़दूर और जुलाहे सुन्दर-सुन्दर कपड़े तैयार करते है, पर वे चिथड़ों में जीवन बिताते हैं; सिपाही अफ़सर के हुक्म पर गोलियों की बौछार अपने ऊपर लेता है, पर राज का सुख उसे नसीब नहीं होता; इन बेचारों को यही काम सिखाया जाता है कि अपने भाई की हत्या किस प्रकार की जाती है।

आवाज़—सुनो, सुनो, ध्यान से सुनो।

जब तुम अपने प्यारे बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हो, उसे प्यार से चूम लेते हो और एक स्वर्गीय सुख का अनुभव करते हो, तब क्या तुम कभी इस बात पर भी ध्यान देते हो कि बड़ा होने पर उसे कितने कष्ट भोगने पड़ेंगे ? क्या तुम पसंद करोगे कि तुम्हारे बाप-दादों की तरह तुम्हारा बच्चा भी घास-पात की तरह पैदा हो और हमेशा चर लिया जाया करे ?

आवाज़—कैसी गूढ़ बात है !

तुमको अपनी वर्तमान अवस्था पर विचार करना चाहिये। तुम्हारे अंदर जो अपराध फैले हुये हैं, समाज के अंग में

रोग के जो कीड़े लग गये हैं, किस प्रकार तुम लोग अपने एक एक लंबे जीवन के लिये पेट की आग मे जलने को डाल दिये गये हो, इन सब बातों पर क्या तुम्हे एक बार नहीं ग़ौर करना चाहिये ?

आवाज़—ज़रूर करेगे ।

क्या तुम नहीं देखते कि धनी लोग पैसे का लोभ देकर कितनी ग़रीबिनों का सतीत्व हरण करते है ?

आवाज़—रोज़ देखते हैं ।

क्या तुम नहीं देखते कि धनी लोग ही गरमी और सुजाक ऐसे भयानक रोगों को अपने शरीर में उत्पन्न करके तुम्हारे घरों मे फैलाते हैं ?

आवाज़—सचमुच वे बड़े पापी होते है ।

क्या तुम नहीं देखते कि तुमसे अधिक से अधिक परिश्रम कराके भी तुमको वे लाभ का उतना ही अंश देते हैं, जिससे तुम केवल जीते रहते हो और रोज़ प्रातःकाल ग़रीब होकर घर से निकलते और दिनभर अमीरों के लिये सुख तैयार करते रहते हो ?

आवाज़—तुम्हारी बाते बडी प्रिय लग रही है ।

क्या तुम सख्या मे कम हो ?

आवाज़—हरगिज़ नही ।

तो तुम एकत्र होकर अपने दुःखो पर विचार करो और उनके दूर करने का उपाय करो ।

आवाज़—उपाय भी तुम्ही बताओ ।

उपाय यही है कि पुराने ज़माने से चली आती हुई मानसिक ग़ुलामी से अपने को मुक्त करो। कोई आदमी इसीलिये अच्छा नहीं कहा जाना चाहिये कि उसका नाम राजा है; बल्कि इसलिये अच्छा कहा जाना चाहिये कि वह अपनी शक्ति से अन्य साधारण आदमियों की अपेक्षा समाज की अधिक सेवा करता है। वह समाज मे सुख और शान्ति बढ़ाने के लिये अच्छे गुणों को बसाता है और दुर्गुणों को एक-एक करके निकालता रहता है।

आवाज़—तुम तो स्वर्ग की बात करने लगे।

मित्रो, तुम थोड़ा भी ध्यान दोगे तो इस पृथ्वी ही पर स्वर्ग आ जायगा। एक राजा जो अपाहिज की तरह बैठा रहता है; मुफ़्त का धन जमाकर वह उससे अपने शरीर के सुख के नाम पर समाज में रोग, अत्याचार, ग़रीबी और पापाचार भरता है उससे तो वह किसान, जो हल जोत रहा है, देश के लिये अधिक क़ीमती है। क्योंकि वह अपनी शक्ति लगाकर पृथ्वी से अन्न उत्पन्न कर रहा है, और जगत् को लाभ पहुँचाता है।

आवाज़—सत्य है सत्य।

मैं दो बातें तुम्हारे नवयुवकों से भी करना चाहता हूँ। नवयुवको, तुममें से कुछ ने शिक्षा पाई है और कुछ पा रहे हैं; क्या तुम भूल गये कि तुम्हारी शिक्षा के दिनों में तुम्हारे लिये अन्न-वस्त्र जुटाने में कितने आदमी लगे थे? क्या तुम भूल गये कि

जिस विद्यालय के सुन्दर मकान में तुम मनुष्य बनने की कला सीखते हो, उसके बनाने में कितने मजदूरों ने अपनी झुकी हुई पीठ पर भारी बोझ उठाया था और ख़ाली पेट रहकर उन्होंने तुम्हारे लिये विद्यालय, अजायबघर और छात्रालय बनाये थे ?

आवाज़—तुम तो स्वर्ग की बात करने लगे ।

तुममें से दो-चार कवि भी हैं; दो-चार चित्रकार भी हैं; कुछ अध्यापक भी हैं; क्या तुम लोग उन ग़रीबों को उनके दान का बदला चुका चुके ? जिसे उन्होंने तुम्हारे कल्याण के लिये अपना और अपने बाल-बच्चों का रक्त निचोड़कर दिया था ।

आवाज़—कौन चुकाता है ?

बहनो ! तुम भी आगे आओ। अभी कल की घटना है, इसी गाँव में एक युवती दासी एक मालदार के घर से इसलिये निकाल दी गई कि उसे गर्भ था । अब वह पतित कहलाकर कहीं आश्रय नहीं पाती है। पर तुमने कभी सोचा कि इसमें अपराध किसका था ? जिस युवती की बात मैं कह रहा हूँ, मैंने उसके विषय में पता लगाया है। वह एक गाँव की रहनेवाली है; ग़रीब घर में उसने जन्म पाया था। ईश्वर ने उसे सुन्दर रूप दिया था; लोग उसके सौन्दर्य को देखते थे तो आनन्द अनुभव करते थे, जैसे फूल को देखकर सब करते हैं। काफ़ी मेहनत-मजूरी करने पर भी वह गाँव में अपना भरण-पोषण न कर सकी, इसलिये सोनपुर में आगई ।

यहाँ एक मालदार के दुराचारी लड़के की नज़र उस पर

पड़ी; उसने ईश्वर के दिये हुये उस सौन्दर्य को, जो समाज में सुख और पवित्रता उत्पन्न करता था, फुसलाकर अपने घर में क़ैद कर लिया। मीठी बातों और सुख के प्रलोभन में पड़कर उस ग़रीब युवती ने अपना सर्वस्व उस पाप में लिप्त धनिक-पुत्र को सौंप दिया। थोड़े ही दिनों के बाद उस युवक की नज़र में दूसरी ग़रीब युवती चढ़ गई। परिणाम यह हुआ कि पहली युवती को उसने यह अपराध लगाकर कि उसको गर्भ है और उसकी चाल-चलन ख़राब है, घर से निकाल दिया। क्या इसको तुम धनी का अत्याचार नहीं समझती हो? तुम्हारे ही कमाये हुये धन से तुम्हारा मान, तुम्हारी मर्यादा इतने सस्ते दामों मे ख़रीदी जाय, यह तो महान् लज्जा और परिताप की बात है न?

आवाज़—धनियों को धिक्कार है!

शायद तुम लोग समझते हो कि सारी दुनिया इसी तरह के जंजाल में फँसी है, इससे निकलने का रास्ता ही नहीं। पर प्रश्न तो यह है कि तुम निकलना चाहते हो या नहीं?

आवाज़—निकलना चाहते हैं।

निकलनेवाले को कोई रोक नहीं सकता। तुम सोचो तो सही; बुद्धि में, बल मे क्या तुम धनी लोगों से हीन हो? तुम जितना परिश्रम कर सकते हो, धनी उसका चौथाई भी कर नहीं सकता; तुम जितनी सुन्दर से सुन्दर और उपयोगी चीज़ें तैयार करने की कला जानते हो, उतनी क्या, उनमे से एक भी धनी

नहीं जानता। पर उसने तुमको ऐसे जाल मे जकड़ रक्खा है कि तुम तो जन्म भर मज़दूर और कुली बने रहते हो और वह बिना परिश्रम किये निश्चिन्त होकर जीवन के सब सुखों और सभ्यता के सब साधनों का आनन्द ले रहा है।

आवाज़—कितना बड़ा अन्याय है!

तुम सड़े-गले घरों मे जानवरों की तरह रहते हो। सरदी, गरमी से बचने के लिये तुम्हारे पास कोई भी साधन नहीं। मालदार आदमी जो खाना अपने कुत्ते को देता है, वैसा तुमको किसी त्योहार के दिन भी नसीब नहीं होता; भगवान् की सृष्टि में ऐसा अन्याय किसने फैला रक्खा है? एक दिन सोचो न।

आवाज़—भाई, तुम बड़े मर्म की बात कहते हो।

अच्छा, अब अधिक आहार न दूँगा; अपच हो जायगा। तुम हज़म न कर सकोगे।

(युवक चबूतरे से उतरकर एक तरफ़ जाता है। लोग तरह-तरह के विचारों में डूबे हुये छितर-बितर होजाते हैं।)

चौथा दृश्य

समय—रात के आठ बजे

स्थान—राजा का दरबार

(दरबार भरा हुआ है। राजा, मन्त्री, सेनापति सब उपस्थित हैं। सोनपुर के बड़े-बड़े धनी सेठ साहूकार भी दरबार में मौजूद हैं)

मनोहरलाल—महाराज! एक महीने से सोनपुर में बड़ा

अंधेर मचा है। किसी के धन और प्राण का कोई भरोसा नहीं है।

राजा—क्या बात है सेठजी ! आपको हमारे राज में कष्ट हो, यह आश्चर्य की बात है।

मनोहरलाल—हमीं को नहीं महाराज ! जितने आपके सेठ महाजन हैं, सभी के प्राण संकट में हैं।

राजा—क्यों, क्या बात है ?

मनोहरलाल—महाराज, कहीं से कोई डाकू आया हुआ है। सोनपुर के पास ही कहीं डेरा डाले है। रोज़ सोनपुर में चक्कर दे जाता है और जिसे चाहता है, उसे लूट लेता है। पंद्रह-बीस महाजन तो ग़रीब हो गये। उनके कितने ही नौकर-चाकर उससे लड़कर मारे गये।

दूसरा साहूकार—कल मेरे पड़ोसी के घर में डाका पड़ा। उसे तो उसने बिलकुल ही निर्धन करके छोड़ा।

राजा—(मन्त्री से) मन्त्रीजी, आप सुन रहे हैं ?

मन्त्री—हाँ महाराज, उसके पकड़ने का प्रबन्ध किया जा रहा है। शीघ्र ही वह और उसके साथी पकड़ लिये जायँगे।

तीसरा साहूकार—महाराज, राज के सिपाही और नौकर-चाकर भीतर ही भीतर उससे मिले हुये हैं, उसे पकड़ेगा कौन ?

सेनापति—(क्रुद्ध होकर) झूठ बात ! महाराज का नमक खाकर कोई डाकू का साथ देगा ? ऐसा कैसे हो सकता है ? महाराज, मैंने सिपाही तैनात किये हैं। अभी इसके रहने का

ठीक पता नहीं लगा; खोज हो रही है। कहीं जंगल में किसी खोह में छिपकर रहता है। पता लगते ही घेरकर पकड़ लिया जायगा।

राजा—उसे पकड़कर शीघ्र मेरे सामने उपस्थित करो। मैं भी तो देखूँ, ऐसा हिम्मतवर कहाँ से पैदा हो गया।

मन्त्री और सेनापति—बहुत अच्छा महाराज !

(दरबार बरख़ास्त होता है)

पाँचवाँ दृश्य

समय—प्रातःकाल

स्थान—राजकुमारी का कमरा

(मृदुला राजकुमारी को डाकू की बात सुना रही है)

मृदुला—राजकुमारी, कुछ दिनों से सोनपुर में एक विचित्र डाकू आया है। सुनती हूँ, वह केवल सेठ-साहूकारों को लूटता है; पर लूट का एक पैसा भी अपने साथ नहीं ले जाता, सब गाँव के दीन-दुखियों को बाँट जाता है। जितने लंपट और दुराचारी पुरुष हैं, उसको सबका पता है, वह उन्हें खोज-खोजकर पीटता है।

राजकुमारी—(कौतूहल से) बड़ी विचित्र बात है। और राज के सिपाही क्या करते हैं ?

मृदुला—राज के सिपाही कर क्या सकते हैं ? सिपाहियों

को छः-छः महीने से तनख्वाहे नहीं मिलीं; वे भूखों मर रहे हैं। डाकू उनके घर में भी धन और अन्न पहुँचा जाता है। भीतर ही भीतर वे भी उसके पक्ष में हैं।

एक दासी—सोनपुर में अब कोई ग़रीब भूखा नहीं सोता है।

दूसरी दासी—डाकू को सब के घर का पता है। मेरे घर में ओढ़ने की कमी थी; जाड़े से तकलीफ थी। यह बात भी न जाने उसे कैसे मालूम हो गई। कल रात में दो कम्बल दे गया।

राजकुमारी—वह ख़ुद देने आया था?

दासी—हाँ राजकुमारी, मैं उसे पहचानती हूँ। वह ख़ुद आया था।

राजकुमारी—उसे सिपाहियों का डर नहीं?

दासी—उसे किसी का डर नहीं। दीन-दुखियों के लिये उसका हृदय दया का समुद्र है; पर शरीर तो उसका दानव की तरह बलवान है। राज के सौ सिपाही एक तरफ़ और वह अकेला एक तरफ़। तब भी वही विजयी होगा।

राजकुमारी—(मृदुला से) मृदुला बहन! तुमने भी उसे देखा है?

मृदुला—नहीं, राजकुमारी! मैंने उसे देखा तो नहीं; पर दासी जो कहती है, वह सत्य है; क्योंकि मैं कइयों के मुख से

ऐसा ही सुन चुकी हूँ। उसके आतंक से कितनी ही बहू-बेटियों की इज़्ज़त बच रही है।

राजकुमारी—वह अकेला ही आता है या उसके संगी-साथी भी आते हैं?

दासी—उसके संगी-साथी बहुत-से हैं। कभी-कभी वह अकेला ही आता है। कभी-कभी उसके संगी-साथी भी आते हैं।

राजकुमारी—दीन-दुखियों के लिये उसके हृदय मे दया है तो वह कोई अच्छे कुल का जान पड़ता है।

दासी—जान पड़ता है, वह किसी राजा का पुत्र है। उसका मुख ऐसा सुन्दर है, जैसा किसी देवता का। उसके चेहरे पर एक अद्भुत ज्योति दिखाई पड़ती है, जो मैंने किसी मनुष्य के चेहरे पर नहीं देखी। उसके नेत्र बड़े बड़े हैं; जिनमें इतनी करुणा भरी है कि वे उसके भार से झँपे-से रहते हैं। पर जब वह दुष्टों पर क्रोध करता है तब उसके नेत्रों से ऐसी ज्वाला निकलने लगती है कि किसी को उसकी ओर देखने की हिम्मत नहीं होती।

राजकुमारी—(मृदुला से) बहन! क्या कभी मुझे भी उसे देखने का अवसर मिल सकता है?

मृदुला—राजकुमारी! मैं पता लगाऊँगी। वह जङ्गल में जिस रास्ते से जाता-आता है किसी दिन संध्या-समय हम उसी तरफ़ टहलने चलेंगी। शायद उसे देख सकें।

राजकुमारी—पर डाकू का क्या भरोसा; कहीं हमें भी लूट ले तो!

पहली दासी—नहीं राजकुमारी, स्त्री-जाति के लिये उसके हृदय में बड़ा सम्मान है। स्त्रियों को देखकर वह नम्रता से सिर झुका लेता है।

दूसरी दासी—कई विवाहों में वह यकायक आया और कन्याओं को बहुत-से गहने, रुपये और कपड़े देकर चला गया।

राजकुमारी—उसकी बातें बड़ी विचित्र हैं।

(दासी को जाने के लिये कहकर)

मृदुला बहन! मैं उस डाकू का परिचय चाहती हूँ।

मृदुला—राजकुमारी! एक डाकू का परिचय प्राप्त करके क्या करोगी?

राजकुमारी—उसे एक उपहार दूँगी?

मृदुला—डाकू को? राज के शत्रु को?

राजकुमारी—हाँ, उस दीन-दुखियों के सहायक को, उस स्त्री-जाति की मर्यादा के रक्षक को, उस प्रजा के मित्र को, उस अत्याचारियों और लम्पटों के शत्रु को, उस तेजस्वी नवयुवक को एक बहुमूल्य उपहार दूँगी।

मृदुला—वह कौन-सा उपहार है राजकुमारी!

राजकुमारी—मेरे पास एक अमूल्य रत्न है, वही उसे दे दूँगी।

मृदुला—मुझे अबतक तुमने नहीं दिखलाया राजकुमारी !

राजकुमारी—वाह, तुम्हीं ने तो उस पर शान चढ़ाकर उसे और चमका दिया है !

मृदुला—हृदय ?

(राजकुमारी मुग्धा की तरह मृदुला की तरफ़ देखने लगती है)

मृदुला—(आँखों में आँसू भरकर) धन्य हो राजकुमारी, दीन-दुखियों के प्रति तुम्हारे हृदय में इतनी करुणा है !

राजकुमारी—मृदुला बहन ! हृदय को यह ईश्वरी विभव तुम्हारे द्वारा मिला है। मुझे अब राज-सुख से घृणा हो गई है। इस पाप की पुरी मे मैं प्रत्येक क्षण घबरा रही हूँ। कभी-कभी जी ऐसा ऊबता है कि महलों से चुपचाप निकलकर भाग जाऊँ और ग़रीबों के बीच मे रहूँ। मुझे वहाँ ईश्वर का निवास दिखाई पड़ता है।

मृदुला—(गद्गद होकर) राजकुमारी !

(इससे अधिक वह नहीं कह सकी)

छठा दृश्य

समय—रात्रि।

स्थान—राजमहल।

(राजा और उसके सब उच्च पदाधिकारी उपस्थित हैं।)

मंत्री—महाराज, कल सेठ मनोहरलाल के दरवाज़े पर डाकू की तरफ़ से एक पत्र चिपकाया गया, जिसमें लिखा था

कि बार-बार कहने पर भी तुमने ग़रीबों पर अत्यचार करना बन्द नहीं किया। हम आज रात को तुम्हे पकड़कर ले जायँगे, और तुम्हारा सब धन ग़रीबों को बाँट देगे। यह एक अच्छा मौक़ा हाथ लग गया। अब डाकू सहज ही मे पकड़ लिया जायगा। सेठ मनोहरलाल बहुत भयभीत थे। मैंने उनको महल के सबसे ऊपरवाले कमरे मे ठहरा दिया है। महल के चारोंओर पहरे का भी पक्का प्रबन्ध कर दिया है और सेठ मनोहरलाल के मकान के आसपास जासूस बैठा दिये गये हैं। फौज भी तैयार है। डाकू के आने का समाचार पाते ही सेनापति उसे घेरकर पकड़ लेंगे।

राजा—फाटक पर काफी पहरे का प्रबंध है न ?

सेनापति—हाँ, महाराज ! सेना के बड़े-बड़े योद्धा लोग फाटक पर पहरा दे रहे हैं। फाटक खुला रक्खा गया है, ताकि वह अन्दर आये तो उसे पकड़ लें। कुछ सैनिक महल के अंदर भी छिपाकर रक्खे गये हैं। मै तो समझता हूँ, वह आयेगा ही नहीं।

मंत्री—उसकी मृत्यु बदी होगी तो उसे कौन रोक सकेगा ?

(राजा और सब सभासद हँसते हैं)

(इतने में फाटक पर हल्ला होता है। पकड़ो, पकड़ो, मारो, मारो, की आवाज़ सुनाई पड़ती है।

राजा डर के मारे महल की एक कोठरी में चला जाता है और उसे भीतर से बन्द कर लेता है।

मन्त्री आड में जाकर छिप ज.ता है। सेनापति नीचे जाता है और

छिपे हुये सैनिकों को सावधान करता है कि डाकू अन्दर आयें तो उसे गिरफ़्तार कर लो।

राजकुमारी मृदुला को लेकर एक ऐसे स्थान पर रहती है, जहाँ से महल का प्रत्येक भाग दिखाई पड़ता है।)

राजकुमारी—देखो मृदुला बहन! डाकू कैसा साहसी है! अकेला आया है। सुनो, क्या कहता है—

डाकू की आवाज़—सिपाहियो, मैं तुमसे लड़ने नहीं आया हूँ। तुम लोग तो मेरे बन्धु हो; मैं उस दुष्ट, दुराचारी मनोहर-लाल के लिये आया हूँ, जिसने ग़रीबों का रक्त चूसकर उन्हे निर्जीव कर दिया है; जिसने ग़रीबो ही के कमाये धन से ग़रीब बहनों का सतीत्व ख़रीदा है; जिसने लंबे-चौड़े ब्याज लगाकर कितने ही गृहस्थो की कमर तोड़ दी है: जिसने अपनी स्त्री को इसलिये त्याग दिया है कि वह सती है, साध्वी है; जिसने अपने इकलौते पुत्र को इसलिये त्याग दिया है कि उसके हृदय मे दीन-दुखियों के लिये दया का भाव है। तुम मनोहरलाल को मेरे सिपुर्द कर दो; मैं रक्त की एक बूँद गिराये बिना उसे लेकर लौट जाऊँगा।

राजकुमारी—मृदुला बहन! जी में आता है कि मैं दौड़कर इस वीर डाकू के गले से लिपट जाऊँ।

मृदुला—सुनो, कोई कुछ कह रहा है।

सेनापति की आवाज़—पकड़ो इस डाकू को। मार डालो इसको; टुकड़े-टुकड़े कर दो; भागकर जाने न पाये।

(कुछ सैनिक तलवार निकालकर झपटते हैं)

डाकू—(थोड़ा पीछे हटकर) एक आदमी पर इतने आदमियों का झपटना कोई वीरता की बात नहीं। मैं फिर कहता हूँ कि मेरी नीयत निर्दोष प्राणियों का रक्त बहाने की नहीं है। मैं भी ग़रीब हूँ, तुम लोग भी ग़रीब ही हो; फिर हम लोग मनोहर-लाल ऐसे धन-पिशाच के लिये अपने प्राण क्यों दें ?

सेनापति की आवाज़—कायरो, तुम लोग तमाशा क्या देख रहे हो ? सैकड़ो तुम खड़े हो और एक आदमी से डर रहे हो ! शर्म नहीं आती ? पकड़ लो इस बदमाश को।

(सिपाही झपटते हैं। डाकू भी तलवार लेकर लड़ता है)

राजकुमारी—अहा, कैसा वीर है ! सैकड़ों सिपाहियों से अकेला लड़ रहा है। इसकी फुर्ती तो देखो; इसकी तलवार तो बिजली की तरह चल रही है; किसी की हिम्मत इसके पास पहुँचने की नहीं होती। ओहो, सिपाही सब भाग खड़े हुये।

(राजकुमारी ताली बजाकर कमरे में नाचने लगती है)

मृदुला—राजकुमारी ! इधर देखो, वह महल के अन्दर आ गया। उसे कोई रोकनेवाला नहीं।

राजकुमारी—सेनापति कहाँ गया ? (हँसती है)

सेनापति की आवाज़—फाटक बन्द कर लो।

(फाटक बन्द होने की आवाज़)

राजकुमारी—(कातर स्वर में) अब वह क़ैद होगया।

मृदुला—उसे कोई क़ैद नहीं कर सकता। वह देखो, वह

मनोहरलाल को ढूँढ़ रहा है। मानो उसे मालूम है कि मनोहरलाल महल के ऊपरवाली कोठरी मे छिपा हुआ है।

राजकुमारी—उसे सब मालूम है। दासी कहती थी न, कि उसे घर-घर का पता है। भला, सब बातों का पता उसे कैसे लग जाता है!

मृदुला—दीन-दुखियो से। सभी दीन-दुखी हृदय से उसको प्यार करते हैं। वे हरएक बात की ख़बर उसे देते रहते हैं।

राजकुमारी—वह देखो, उसने उस कोठरी का दरवाज़ा एक ही धक्के से तोड़ डाला। हे भगवान्, उसकी भुजाओं मे कितना बल है! मृदुला बहन! फाटक पर जब वह सिपाहियों से बात कर रहा था, तब मैंने उसका मुँह देखा था; बड़ा सुन्दर मुँह है बहन! उसके विशाल नेत्र संसार के सब रत्नों से अधिक क़ीमती हैं।

मृदुला—तुम्हारे उपहार से भी।

राजकुमारी—(कुछ लजाकर) मेरे उपहार का मूल्य तो वही आँक सकता है।

(छत पर चिल्लाहट; मनोहरलाल चिल्लाता है)

मनोहरलाल—दोहाई महाराज की; मुझे बचाओ; डाकू मुझे पकड़े लिये जा रहा है।

(राजमहल में चारोंओर सन्नाटा है)

राजकुमारी—(मृदुला से) अन्त में मनोहरलाल को उसने

पकड़ ही लिया। वह देखो, जैसे सिंह हिरन के छोटे बच्चे को पकड़कर उठा लेता है, उसी तरह डाकू ने मनोहरलाल को पकड़कर महल के नीचे फेंक दिया। (सिहर कर) यह भयानक क्रूरता है। मनोहरलाल की तो हड्डी-हड्डी छितरा गई होगी। राम, राम, डाकू के हृदय में सचमुच दया नहीं होती।

मृदुला—बहन, मनोहरलाल ने न जाने कितनी ग़रीब बहनो को धर्म-भ्रष्ट किया है। उसे ठीक सज़ा मिल गई।

राजकुमारी—(कुछ सावधान होकर) डाकू का नाम क्या है? इसे अब डाकू कहना प्रिय नहीं लगता।

मृदुला—कोई प्यारा-सा नाम रख लो। मैं तो उसका असली नाम नहीं जानती।

राजकुमारी—इसका नाम रख लो प्रभाकर।

(राजकुमारी का मुख लज्जा से लाल हो जाता है।)

मृदुला—ओहो, प्रभाकर को देखकर पद्म विकसित होता है न?

(राजकुमारी मृदुला के गाल पर एक चपत लगाती है)

मृदुला—देखो, प्रभाकर नीचे उतर रहा है। पर नीचे तो सेनापति ने जाने का द्वार बन्द करा दिया है।

(मन्त्री का प्रवेश)

राजकुमारी—यह ऊपर कौन है? इसने ज़ीने के ऊपर का द्वार बंद कर दिया। अब तो डाकू ज़ीने मे क़ैद हो गया।

मृदुला—यह तो मंत्रीजी हैं। डाकू को क़ैद करके डरके

मारे चुपचाप खसके जा रहे हैं। मालूम होता है, ऊपर ही कहीं छिपे थे।

राजकुमारी—(मुँह बिचकाकर) मुझे इस आदमी से बड़ी घृणा है। बहन ! मैं जाकर ज़ीना खोल देना चाहती हूँ।

मृदुला—ऊपर आकर वह किधर जायगा ?

राजकुमारी—चाहे जिधर जाय।

(राजकुमारी ज़ीने के किवाड़ की जंज़ीर खोल देती है। डाकू निकलकर राजकुमारी के सामने खड़ा हो जाता है। दोनों क्षण भर तक एक दूसरे को देखते हैं।)

डाकू—इस समय मैं किसके उपकार का ऋणी हूँ ?

राजकुमारी—(सहसा मुँह से निकल गया) पद्मावती के।

(डाकू धन्यवाद देकर, दौड़कर महल के कोने जाता है और नीचे झाँककर कूद पड़ता है।)

(राजा, मंत्री और सेनापति का प्रवेश)

राजा—मंत्रीजी ने कहा कि डाकू ज़ीने मे क़ैद होगया, पर किसने दरवाज़ा खोलकर उसे निकल जाने दिया ?

राजकुमारी—(दृढ़ता से) मैने !

राजा—(क्रोध से) तुमने ? क्यों ?

राजकुमारी—क्योंकि वह वीर था। सैकड़ो आदमी मिलकर एक आदमी को घेर लें और उसे चुपके से क़ैद कर लें। यह वीरता नहीं, कायरता है।

राजा—(क्रोध से) तुम मेरी पुत्री होकर मेरे शत्रु का

पक्ष ले रही हो ? सेनापति ! राजकुमारी को राजा के शत्रु की सहायता करने के अपराध मे महल के .कैदखाने मे लेजाकर .कैद कर दो ।

सेनापति—(झुककर प्रणाम करके) बहुत अच्छा, धर्मावतार !

(सेनापति राजकुमारी को महल के .कैदख़ाने में ले जाता है। राजा मंत्री आदि सब जाते हैं ।)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

समय——सायंकाल।

स्थान——महल के अन्दर कुसुम का कमरा।

(एक दासी का प्रवेश)

दासी—देवीजी ! एक माताजी आपसे मिलना चाहती हैं।

कुसुम—कौन हैं ?

दासी—कल्याणी माँ।

कुसुम—(चौंककर) सेठ मनोहरलाल की धर्मपत्नी ?

दासी—हाँ।

कुसुम—ले आओ। (स्वगत—आँखों में आँसू भरकर) हा ! मुझे क्या मालूम था कि कल्याणी माँ के दर्शन मैं इस दशा मे करूँगी।

(कमरे में कल्याणी का प्रवेश)

(दासी पहुँचाकर लौट जाती है। कुसुम दौड़कर कल्याणी के गले से लिपट जाती है। कल्याणी उसे छाती से चुपटा लेती है।

फिर कुसुम कल्याणी को लेजाकर ऊँचे आसन पर बैठाती है और स्वयं उसके पास नीचे बैठकर उसकी गोद में सिर रख देती है। कल्याणी उसके सिर पर हाथ फेरती है)

कुसुम—कल्याणी माँ! सिर पर हाथ फेरती रहो, बहुत सुख मालूम होता है। कितने वर्षों के बाद यह स्पर्श मिला है।

(कल्याणी की आँखों में आँसू आजाते हैं)

कल्याणी—बेटी! सुख से हो न?

कुसुम—कल्याणी माँ! सुख की परिभाषा बदल गई है। अब मुझे दुःख ही मे सुख मालूम होता है।

कल्याणी—ठीक है बेटी! आचार्यजी ने तुम्हारे जीवन को प्रकाश से भर दिया है।

कुसुम—माँ! तुमने क्यों रोक दिया था कि मैं सोनपुर में तुमसे न मिलूँ?

कल्याणी—मिलने का समय आता तो बेटी! क्या मैं तुमसे बिना मिले रहती! असमय में मिलना हम दोनों के दुःख का कारण होता।

कुसुम—(कल्याणी के शरीर को गहनों से खाली देखकर) माँ, तुमने सब गहने बेंचकर मेरी शिक्षा मे लगा दिये!

(कुसुम का कंठ भर आता है)

कल्याणी—बेटी, वे गहने तो अब और अधिक सुन्दर लग रहे हैं।

कुसुम—आचार्याजी से सुना था माँ ! तुमको कपड़ों का बड़ा शौक था। रेशमी छोड़ तुम सूती कपड़े पहनती ही न थी। गहनों के साथ क्या कपड़े भी चित्त से उतर गये ?

कल्याणी—बेटी ! मैं अब ग़रीबों के महल्ले मे रहती हूँ। वहाँ रेशमी कपड़े प्रिय नहीं लगते।

(कुसुम मुँह उठाकर कल्याणी के मुख की तरफ़ श्रद्धा से देखती है। कल्याणी के गंभीर और शांत चेहरे पर कोई अन्तर नहीं आता।)

कुसुम—राज-सुख छोड़कर ग़रीबों के महल्ले मे क्यों चली गई, माँ !

कल्याणी—पैसा इकट्ठा देखकर बहुत भय लगता है बेटी ! पैसा जब तक ज़रूरत भर को रहता है, तब तक आदमी उसे खाता रहता है; ज़रूरत से अधिक पैसा आदमी को खाने लगता है।

(एक आह भरकर)

देखो न, मेरे स्वामी मेरे विवाह के बाद दस वर्ष तक कैसे चरित्रवान् थे; जब वे रास्ते में निकलते थे तब छोटे-बड़े सब उन पर आशीर्वादों की वर्षा करते थे। उस समय मेरे आनन्द की क्या कोई सीमा थी बेटी ! मैं स्वर्ग-सुख का अनुभव करती थी। धीरे-धीरे पैसा अधिक हुआ, उसने मेरे स्वामी को खा लिया।

(मनोहरलाल के सम्बन्ध में अत्यन्त शोकपूर्ण समाचार सुनने या कहने के भय से कुसुम भीतर ही भीतर काँप रही थी।)

कुसुम—ग़रीबों की बस्ती में तुम क्या करती हो, माँ !

कल्याणी—मैं ग़रीब की तरह रहती हूँ। मैं प्रतिदिन अनुभव करती हूँ कि मेरा हृदय पवित्र होता जा रहा है और उसमें एक अद्‌भुत प्रकाश धीरे-धीरे उदय हो रहा है। वह प्रकाश बड़ा प्रिय लगता है, बेटी !—मैं ग़रीबों के बच्चों को पढ़ाती हूँ।

कुसुम—जीविका के लिये क्या करती हो, माँ !

कल्याणी—कपड़े सीती हूँ।

(मृदुला प्रेम से विह्वल होकर कल्याणी की गोद में सिर डालकर उसके चरणों पर लोटने लगती है।)

कुसुम—मुझे क्यों राजमहल में फेंक दिया, माँ !

कल्याणी—बेटी ! यह भी सेवा का एक स्थान है। मैं जानती हूँ बेटी ! तुम्हारी संगति का राजकुमारी पर बहुत प्रभाव पड़ा है। और एक दिन इसका परिणाम सोनपुर राज की सारी प्रजा के लिये बड़ा ही मंगलदायक होगा। उसका श्रेय बेटी ! तुमको मिलेगा।

कुसुम—माँ, अशोक कहाँ है ?

कल्याणी—अशोक डाकुओं के दल में शामिल होगया है।

कुसुम—(आश्चर्य से) क्यों माँ !

कल्याणी—दीन-दुखियों की सेवा के लिये।

कुसुम—डाकुओं के दल से बाहर रहकर क्या दीन-दुखियों की सेवा नहीं हो सकती थी ?

कल्याणी—हो सकती है और होती भी है। पर शारीरिक रोग को दूर करने के लिये जिस प्रकार चतुर डाक्टर आवश्यक समझकर शस्त्र और बलवर्द्धक औषधि दोनों का उपयोग

करते हैं, उसी प्रकार सामाजिक रोग के लिये भी बलप्रयोग और सेवा दोनों प्रकार के उपायों की आवश्यकता पड़ती है। जहाँ बल प्रयोग की आवश्यकता होती है, वहाँ केवल बुद्धि-वाद से सफलता नहीं मिल सकती।

कुसुम—(गंभीर होकर) अशोक को क्या तुमने डाकुओं के दल मे भेजा है ?

कल्याणी—नहीं; वह अपनी इच्छा से गया है। पढ़ लिखकर जब से घर आया, तभी से उसके विचारां मे बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ रहा था। बारबार वह कहा करता था कि मुझे शिक्षा इसलिये मिली है कि मै समाज को अधिक से अधिक लाभ पहुँचा सकूँ। सोनपुर के जितने शिक्षिति लड़के थे, डाकू सरदार ने सबको अपने दल मे मिला लिया। एक दिन अशोक ने मुझसे पूछा—क्या मैं दीन-दुखियों की सेवा के लिये अपना जीवन दे सकता हूँ ? मैंने कहा—यह मेरे लिये गर्व की बात होगी बेटा !—तभी से वह चला गया।

कुसुम—तब से मिलता नहीं ?

कल्याणी—कभी-कभी आता है। कहता भी है कि डाकू सरदार से उसकी बड़ी घनिष्ठता है। वह डाकू सरदार के देवता जैसे गुणों के वर्णन से मेरा हृदय भर जाता है।

कुसुम—मैं भी उसके विषय में बड़े अनोखे अनोखे समाचार सुनती हूँ। पर माँ ! अशोक ने राजा का सा सुख

छोड़कर बड़े त्याग का परिचय दिया। आख़िर तुम्हारा ही पुत्र तो है!

(कल्याणी को पलकें कुछ झुक जाती हैं)

अशोक के विवाह का क्या हुआ माँ!

कल्याणी—इसी पर तो उसके पिता से उसका विवाद होगया था। उसके पिता उसका विवाह एक बड़े धनी की कन्या से करना चाहते थे, जो शायद पढ़ी लिखी नहीं है। अशोक ने कहा—मैं किसी ग़रीब की पढ़ी-लिखी कन्या से विवाह करूँगा। मुझे दीन-दुखियों की सेवा के लिये एक संगी चाहिये, धन-दौलत नहीं चाहिये। इस पर उसके पिता ने क्रुद्ध होकर उसे घर से निकाल दिया और घोषित कर दिया कि अशोक उनका उत्तराधिकारी नहीं।

(कुसुम यह समाचार सुनकर कुछ देर तक गंभीर हो जाती है।)

कुसुम—अशोक को धन्य है!

कल्याणी—बेटी! मै तुम्हारे पास एक ज़रूरी काम से आई हूँ।

कुसुम—(बड़ी उत्सुकता से) क्या है माँ! तुमको मेरे पास आना पड़े, यह तो मेरे लिये लज्जा की बात है।

कल्याणी—लज्जा की बात क्यों है बेटी! क्या तुम कोई ग़ैर हो? तुमको तो मालूम ही है कि मेरे पति को डाकू पकड़ ले गये।

(कुसुम कुछ कहते-कहते रुक जाती है)

कल्याणी—कुछ भी हो, वे हैं तो मेरे पति ही; मैं उनकी

पत्नी हूँ। आर्य-जाति की स्त्री हूँ। हृदय में पति के लिये जो श्रद्धा, जो प्रेम परम्परा से मिलता आ रहा है, वह पति के दुःख में द्रवित न हो, ऐसा होना असम्भव है।

कुसुम—मैं तुम्हारे मन का कष्ट समझती हूँ, माँ! पर कल रात में डाकू ने उन्हें बड़ी निर्दयता से महल के नीचे फेंक दिया; फिर पता न चला कि क्या हुआ?

कल्याणी—डाकू के साथियों ने कम्बल फैलाकर उस पर उनको लोक लिया था। वे ज़मीन पर गिरने ही नहीं पाये, न उनको चोट लगी। वे सकुशल डाकू सरदार के बन्दी हैं। धन जाय, इसका तो मुझे कोई शोक नहीं। जो धन मेरे स्वामी के नाश का कारण है, वह मुझे प्रिय कैसे लग सकता है। पर उनके शरीर को कोई कष्ट नहीं पहुँचना चाहिये। यदि तुमसे इस सम्बन्ध मे कुछ हो सके तो बेटी! करना। यही कहने आई हूँ।

कुसुम—माँ! मैं अपने प्राण देकर भी पिताजी की रक्षा कर सकूँगी तो करूँगी। अशोक ने पिता के प्रति निष्ठुरता का व्यवहार कभी न किया होगा।

कल्याणी—कभी नहीं। पर अशोक अपने सरदार के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, ऐसा वचन देने ही पर वह दल में शामिल किया गया है।

कुसुम—अच्छा, माँ! मैं अभी से इस सम्बन्ध में सावधान होती हूँ।

(थोड़ा ठहरकर बातचीत का सिलसिला बदलने के लिये)

कुसुम—राजमहल तो बड़ी भयानक जगह है माँ !—यहाँ कोई किसी का विश्वासपात्र नहीं। सब एक दूसरे से भयभीत रहते हैं। यह तो नरक से भी अधिक दुःखपूर्ण है। यहाँ छोटा-बड़ा हरएक व्यक्ति एक न एक षड्यन्त्र का संचालक है। यहाँ षड्यन्त्र के बिना कोई ठहर ही नहीं सकता। मैं यद्यपि अपने को लक्ष्य पर सदा स्थिर रखती हूँ, पर रात-दिन एक अस्वाभाविक वातावरण में रहने से कभी-कभी ऊब जाती हूँ और जी में आता है कि निकलकर ग़रीबों की बस्ती में जा बसूँ, जहाँ षड्यन्त्र नहीं, अविश्वास नहीं, छल नहीं, भय नहीं।

कल्याणी—बेटी ! धीरज धरो। दुःख को वीरता के साथ सहने ही में मनुष्यता की सच्ची परीक्षा है।

कुसुम—उधर डाकू सरदार की कृपा से राज में अत्याचार तो एक प्रकार से बन्द ही होगया; पर राजा इतने निर्बल हैं कि मन्त्री उन्हे दबाये आ रहा है। वह अपने पुत्र से राजकुमारी की शादी करके राज को हड़पना चाहता है। उसने राजा के अत्यन्त विश्वासी सेवकों को भी अपनी ओर मिला लिया है। राजा, रानी और राजकुमारी तीनों इस समय निस्सहाय हैं। यदि राजा मन्त्री की इच्छा पूरी न कर सके तो राजा और रानी दोनों के प्राण संकट में हैं।

कल्याणी—ईश्वर की इच्छा, बेटी ! संसार में सुखी कौन

है ? सुखी वही है जिसने दुःख को गले लगा लिया है। मै अब जाती हूँ।

(उठती है। कुसुम उसे श्रद्धासहित प्रणाम करती है और द्वार तक पहुँचाने जाती है)

कुसुम—(द्वार पर) जयंत का कुछ पता नहीं लगा, कल्याणी माँ !

कल्याणी—(शोक भरे शब्दों में) नहीं, बेटी !

(कल्याणी विदा होती है)

दूसरा दृश्य

समय—रात्रि।

स्थान—डाकू सरदार का घर।

(दो पहाड़ियों के बीच में एक लम्बा-सा रास्ता है। उसमें अगल-बगल गुफाये खोदकर उसमें डाकू और उसके संगी-साथी रहते हैं। दर्रे के आसपास घना जङ्गल और लम्बे-चौड़े मैदान हैं। डाकू सरदार अपनी गुफा में अकेला बैठा हुआ कुछ गा रहा है। एक मन्द प्रकाश वाला दीपक टिमटिमा रहा है।

दो पहरेदार युवक एक सुन्दर युवक को पकड़े हुये उपस्थित होते हैं।

पहरेदार—यह युवक राजा का कोई भेदिया जान पड़ता है। रात मे इधर-उधर पता लगाता हुआ हमे मिला है। पूछने

पर यह अपना ठीक पता और इधर आने का उद्देश्य नहीं बतलाता है।

सरदार—क्यो युवक ! तुम कौन हो ? यहाँ क्यो आये ?

युवक—सरदार ! आप से एकान्त मे बात करने की मेरी इच्छा है।

(दोनों पहरेदार सरदार का इशारा पाकर चले जाते हैं। युवक खड़े ही खड़े बात करता है।)

युवक—क्या आप मुझे पहचान लेंगे ? ग़ौर से देखिये।

सरदार—(दिये की लौ तेज़ करके ध्यान से देखकर) तुम राजकुमारी पद्मावती जान पड़ती हो, जिसने मुझे राजमहल मे क़ैद से छुटकारा दिया था ?

युवक—हाँ, जिसने एक वीर के लिये अपना कर्त्तव्य पालन किया था।

सरदार—(उठकर उसके लिये एक आसन देकर) आइये, देवि ! पधारिये। इस दीन-दुखियों की कुटिया में मैं आपका स्वागत करता हूँ।

(राजकुमारी बैठ जाती है। सरदार भी अपने आसन पर बैठ जाता है।)

सरदार—इस निर्जन स्थान में, रात्रि के समय, सोनपुर की राजकुमारी के अकेले आने का अभिप्राय क्या मैं जान सकता हूँ ?

राजकुमारी—सरदार ! आप शायद सुन चुके होंगे कि मैं राजमहल मे क़ैद कर दी गई थी।

सरदार—हाँ, मै सुन चुका हूँ ।

राजकुमारी—राज्य मे भीतर ही भीतर क्या षड्यन्त्र चल रहा है, यह भी आप शायद जानते होगे।

सरदार—थोड़ा बहुत जानता हूँ, राजकुमारी! राज्य की रचना ही इस प्रकार की है कि बिना षड्यन्त्र के वह चल नहीं सकता। पर मैं तो दीन-दुखियों मे रहता हूँ। इससे उधर कुछ विशेष ध्यान नहीं देता।

राजकुमारी—मेरे पिता बहुत निर्बल स्वभाव के हैं। मंत्री बहुत धूर्त है। मै अपने माता-पिता की एक ही सन्तान हूँ। मन्त्री अपने लड़के से मेरा विवाह कराके राज्य पर अधिकार करना चाहता है। मैं मन्त्री के लड़के से बड़ी घृणा करती हूँ। वह बड़ा विषयी, लम्पट, शराबी, क्रूर और आलसी है। मै अपना जीवन उसके हाथ मे दूँ, इससे तो अच्छा है कि मैं किसी मजदूर के साथ विवाह करके अपना जीवन परिश्रम, स्वावलम्बन और सत्य के प्रकाश में बिताऊँ।

सरदार—धन्य हो राजकुमारी !

राजकुमारी—मेरे पिता मंत्री के दबाव मे पड़कर कुछ सहमत हो गये थे; पर मैंने उन्हे स्पष्ट कह दिया कि मेरा विवाह आप किसी सद्गुणी गरीब से कर दीजिये, पर मैं मंत्री के लड़के को नहीं चाहती हूँ। पर कन्या की सुनता कौन है ? मेरे माता-पिता की स्वीकृति लेकर मंत्री जबरदस्ती अपने घृणित पुत्र के साथ मेरा विवाह कराके राज्य पर अधिकार

कर ही लेगा; पीछे चाहे मैं आत्महत्या करके मर ही क्यों न जाऊँ ।

सरदार—धन दोनो तरफ़ अपराध करा सकता है राजकुमारी !

राजकुमारी—मेरे मन की दृढ़ता देखकर मेरे माता-पिता ने मंत्री को स्पष्ट कह दिया कि राजकुमारी का विवाह मंत्री-पुत्र से नहीं होगा ।

सरदार—(उत्सुकता से) फिर ?

राजकुमारी—यह महीनों पहले की बात है । इधर मंत्री ने मेरे राजवंश के अत्यंत विश्वासपात्र व्यक्तियो को भी किसी को धन, किसी को जागीर, किसी को ऊँचा पद देकर अपनी ओर मिला लिया ।

सरदार—राज्य मे तो किसी को विश्वासपात्र समझना ही भूल है ।

राजकुमारी—सेनापति, छोटे मन्त्री-गण, सभासद सभी मंत्री के स्वर मे स्वर मिलाकर बोलने लगे । राजा को चारो तरफ से निर्बल करके मंत्री ने परसों राजा और रानी को अपने घर निमंत्रित किया । वहाँ जाने पर मन्त्री ने फिर वही मेरे विवाह का प्रसंग छेड़ा । मेरे माता-पिता ने फिर अस्वीकार किया । इस पर मन्त्री ने दोनों को वहीं क़ैद कर लिया और कहा कि जबतक स्वीकृति-पत्र पर वे हस्ताक्षर न करेंगे तबतक छुटकारा नहीं पा सकते ।

सरदार—ये बातें आपको कैसे मालूम हुईं राजकुमारी !

राजकुमारी—मेरी सहेली मृदुला रोज़ दो वक्त मुझे क़ैदख़ाने मे भोजन देने जाती है। उसने आज शाम को ये सब समाचार मुझे सुनाये। किसी से उसे मालूम हुआ होगा।

सरदार—आपकी सहेली का नाम मृदुला है ? उनका चरित्र तो देवी जैसा पवित्र और प्रभात की तरह उज्ज्वल है, राजकुमारी !

राजकुमारी—आप उन्हें कैसे जानते हैं ?

सरदार—मै यह नहीं जानता कि वे कौन हैं ? पर यह जानता हूँ कि राजकुमारी ! आपके अंदर उन्हीं का तो विकास हो रहा है।

राजकुमारी—(मृदुला के प्रति श्रद्धा का भाव प्रदर्शित करके) सच है सरदार ! मेरे जीवन पर उन्हीं की छाप है।

सरदार—अच्छा, फिर ?

राजकुमारी—अब मेरे जीवन-मरण का प्रश्न मेरे सामने है। पहला काम तो मेरा यह है कि मैं अपने माता-पिता को उस दुष्ट मन्त्री के बन्धन से मुक्त करूँ। दूसरा अपने को पापी के संसर्ग से बचाऊँ।

सरदार—बहुत कठिन काम है, देवी !

राजकुमारी—आपकी सहायता मिले तो कुछ भी कठिन नहीं है।

सरदार—पर मैंने तो दीन-दुखियों की सहायता का व्रत लिया है। राज्य के व्यक्तिगत् झगड़ों में मैं कैसे पड़ सकता हूँ ?

राजकुमारी—क्या राजा-रानी राज्य से अलग हैं ? उन पर अत्याचार हो तो क्या आप उनकी सहायता न करेंगे ?

सरदार—मैं तो किसी पर भी अत्याचार सहन नहीं कर सकता। मैं तो अत्याचार को निर्मूल ही करना चाहता हूँ। इस समय न तो राजा ही का शासन अच्छा है और न मंत्री का ही हो सकता है। राजा तो नाममात्र को है, शासन तो मन्त्री ही कर रहा है। किसी तरह षड्यन्त्र करके राज्य का पूर्ण अधिकार वह अपने हाथ में कर लेगा तब भी शासन का स्वरूप तो वही रहेगा। अतएव मैं इसमें प्रजा के किस कल्याण की कामना से पड़ूँ, यह मैं निश्चय नहीं कर पाता हूँ।

राजकुमारी—पर मुझ पर जो अत्याचार होने वाला है, उस विषय में भी आप तटस्थ रहेंगे ?

सरदार—नैतिक दृष्टि से राज-परिवार के लोगों के व्यक्तिगत जीवन में पड़ने का अधिकार मुझे क्या है ? सर्वसाधारण के हित के लिये ही मैं कुछ कर सकता हूँ।

राजकुमारी—यदि मेरा विवाह मन्त्री-पुत्र के साथ न होकर किसी लोक-सेवक, कर्त्तव्य-परायण और सदाचारी पुरुष के साथ हो और वह राज्य में सुव्यवस्था और शान्ति स्थापित

करने मे सफलता प्राप्त करे तो क्या आप के उद्देश्य की सिद्धि नहीं होगी ?

सरदार—होगी। यहाँ मैं आप से सहमत हो सकता हूँ। (प्रसन्न होकर) बात-चीत की में कला मे आप बहुत निपुण जान पड़ती हैं: पर मै केवल एक कल्पना के पीछे अपने और मन्त्री के आदमियों की हत्या मे कैसे प्रवृत्त हो सकता हूँ ?

(राजकुमारी चुप होकर निराशाभरी दृष्टि से सरदार का] मुख देखती है।)

सरदार—(शान्त और गंभीर मुखमुद्रा से) पर आप का तो मुझपर व्यक्तिगत ऋण है। आपने मेरे प्राण बचाये हैं। क्या आप उसका बदला चाहती हैं ?

राजकुमारी—मैं बदला नहीं चाहती, सरदार! मैंने तो केवल अपना एक कर्त्तव्य पालन किया था। उसका बदला तो उसी समय मिल गया कि आप दीन-दुखियों के कल्याण के लिये जीवित बच गये।

सरदार—ठीक है, राजकुमारी! मुझे भी अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। (कुछ ठहरकर) आप युद्ध करना जानती हैं ?

राजकुमारी—हाँ, मुझे घोड़े पर चढ़ने और शस्त्र चलाने की शिक्षा मिली है; पर कभी युद्ध करने का प्रसंग नहीं पड़ा।

सरदार—अच्छा, कल आप मन्त्री के विरुद्ध युद्ध छेड़िये। आप के शरीर की रक्षा का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ; क्योंकि आपने भी मेरा शरीर बचाया था।

राजकुमारी—(आँखों मे हर्ष के आँसू भरकर) सरदार ! कृपया इस अत्याचार-पीड़ित, दीन और दु:खी पद्मावती का धन्यवाद स्वीकार कीजिये ।

सरदार—धन्यवाद की आवश्यकता नहीं, राजकुमारी !

मैं सेवक, सचराचर रूप-राशि भगवन्त ।

(कुछ रुककर) हाँ, आपने यह तो बताया ही नहीं कि क़ैद से आप कैसे निकल आईं ?

राजकुमारी—शाम के भोजन के पश्चात् मैं मृदुला बहन के कपड़े पहनकर बाहर निकल आई, और अपने कपड़े उसे दे आई । अँधेरा काफी हो गया था । फाटक पर पहरे की कोई विशेष पाबन्दी नहीं थी; इससे मैं थोड़ी ही सावधानी से बाहर आगई ।

सरदार—आपको कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ मिलूँगा ?

राजकुमारी—मृदुला बहन को न जाने कैसे आपके सम्बन्ध की बहुत-सी बातें मालूम हैं । उसी ने बताया था कि आप बस्ती से दो-तीन कोस पूरब तरफ, पहाड़ियों के बीच, में कहीं रहते हैं । बस्ती से बाहर निकलकर मैंने अपने कपड़े पुरुष के-से कर लिये ! फिर आपको ढूँढ़ती-ढूँढ़ती मैं उन दो युवकों को मिली जो शायद जंगल में आपके पहरेदार हैं । उन्होंने मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया ।

सरदार—आपके पास कोई शस्त्र है ?

राजकुमारी—हाँ, आते समय मृदुला बहन के कमरे से मैं उसकी तलवार कपड़ों मे चुराकर लेती आई हूँ।

सरदार—क्या देवी मृदुला तलवार चलाना भी जानती हैं?

राजकुमारी—युद्ध-विद्या मे उनका अभ्यास मुझसे अच्छा है। वे प्रतिदिन नियमित अभ्यास करती हैं।

सरदार—मगर राजकुमारी! देवी मृदुला ने तो तुम्हारे लिये अपने को संकट मे डाल लिया। तुम तो राजकुमारी हो। पिता के क्रोध मे पड़कर कुछ समय के लिये महल से बाहर जाने की रोक दी गई हो, यही तुम्हारी क़ैद है। पर कल प्रात:काल महल के पहरेदारों को जब तुम्हारे बदले क़ैदख़ाने में देवी मृदुला मिलेगी तब तुमको भगा देने के अपराध में क्या वे फाँसी या वध की सज़ा न पायेंगी? मंत्री उनको क्या जीवित छोड़ देगा?

राजकुमारी—(निस्तब्ध होकर, फिर उठकर) सरदार! मुझे महल में वापस जाने की आज्ञा दीजिये। मैं मृदुला बहन को संकट मे डालकर राजपाट और मान कुछ भी नहीं चाहती। मैं अपना प्राण ख़ुशी से दे दूँगी, पर मृदुला बहन के प्राण मैं ले नहीं सकती। मैं अब ठहर नहीं सकती। —

सरदार—राजकुमारी! ठहरिये। मैंने आपकी परीक्षा के लिये यह कहा था। देवी मृदुला की रक्षा का भार मुझ पर है। वह राजकुमारी नहीं; वह तो दीन-दुखियों की रक्षिणी है। उन पर तो हमारी सारी शक्ति समर्पण है।

(सरदार ताली बजाता है । एक तेजस्वी युवक आता है)

सरदार—अशोक ! ये सेनपुर की राजकुमारी पद्मावती जी हैं ।

(अशोक राजकुमारी को प्रणाम करता है)

सरदार—ये राजमहल के क़ैदख़ाने में देवी मृदुला को अपने स्थान पर छोड़कर महल से निकल आई हैं और कल मंत्री के विरुद्ध युद्ध-यात्रा करनेवाली हैं । ऐसी दशा में कल प्रातःकाल पता चल जाने पर देवी मृदुला पर संकट आ सकता है । मैं उनके उद्धार का काम तुम्हें सौंपता हूँ । वे दीन-दुखियों की रक्षिणी जगद्धात्री हैं ।

(राजकुमारी अशोक को कैदखाने की ताली देती है; क़ैदख़ाने का पता बताती है । अशोक सरदार की आज्ञा आदरपूर्वक सिर झुकाकर स्वीकार करता है और फिर चला जाता है ।)

राजकुमारी—हाँ सरदार ! एक बात तो मैं भूल ही रही थी । मृदुला बहन ने चलते समय आपसे एक निवेदन करने को कहा था ।

सरदार—मैं देवी मृदुला के निवेदन की अपेक्षा उनकी आज्ञा सुनने में अधिक सुख अनुभव करूँगा ।

राजकुमारी—उन्होंने सेठ मनोहरलाल को छोड़ देने की प्रार्थना की है ।

सरदार—स्वीकार ।

(दीपक की बत्ती तेज़कर सरदार एक पत्र लिखता है)

दीन-दुखियों के कल्याण के लिये तप करनेवाली देवी

मृदुला को अधिकार दिया जाता है कि वे जिस समय चाहें, स्वयं आकर, अपने हाथों से मनोहरलाल को हमारे क़ैदखाने से निकालकर चाहे जहाँ, ले जायँ। यदि देवी मृदुला चाहे तो मनोहरलाल की वह अधिकांश सम्पत्ति भी, जो दीन-दुखियों को बाँट देने से बच रही है, उसे दे दी जाय। जयंत

(सरदार पत्र राजकुमारी को सुनाकर ताली बजाता है। अशोक का प्रवेश। सरदार पत्र को लिफ़ाफ़े में बन्द करके अशोक को देता है।)

सरदार—अशोक ! यह पत्र अपने साथ सुरक्षित लेजाकर देवी मृदुला को दे देना; और इसमें जो कुछ लिखा गया है, उसे ठीक-ठीक तामील करा देने का भार भी मैं तुम पर सौंपता हूँ।

(अशोक झुककर स्वीकार करता है और बाहर चला जाता है)

सरदार—अच्छा, राजकुमारी ! अब आप थोड़ा विश्राम कर लें। मैं अपने साथियों को तैयार होने की सूचना दे आऊँ। प्रातःकाल होते ही आप मन्त्री के महल पर चढ़ाई करेंगी। हम लोग आपकी रक्षा करेंगे। माता-पिता का उद्धार संतान के हाथ से हो, इससे बढ़कर उसके लिये गर्व की बात और क्या होगी ? इसलिये मैं हृदय से चाहता हूँ कि आप केवल अपनी ही शक्ति से शत्रु को पराजित करें।

(सरदार ताली बजाता है। अशोक का प्रवेश)

सरदार—अशोक ! राजकुमारी दो घंटे विश्राम करेंगी।

अशोक—राजकुमारी के विश्राम के लिये सब प्रबन्ध ठीक है।

सरदार—(राजकुमारी से) पधारिये। देवी!

(राजकुमारी अशोक के पीछे-पीछे जाती है। सरदार अकेला बाहर निकल जाता है)

तीसरा दृश्य

समय—रात्रि के तीन बजे।

स्थान—राजमहल का क़ैदख़ाना।

(राजमहल के पिछवाड़े से रस्सी की सीढी लगाकर अशोक ऊपर पहुँचता है। क़ैदख़ाने का ताला खोलकर वह भीतर प्रवेश करता है। चारों तरफ़ सन्नाटा है। क़ैदख़ाने में मृदुला पलँग पर गाढ निद्रा में सो रही है। दीपक का मंद-मंद प्रकाश उसके मुख पर पड़ रहा है)

अशोक—(मन ही मन) अहा! यही देवी मृदुला हैं। इनके मुख की ज्योति से तो घर आपसे आप प्रकाशित हो रहा है; दीपक की क्या आवश्यकता थी। कितना सुन्दर मुख है! कितना निर्मल हृदय है; हृदय पवित्र न होता तो उन्हे ऐसी निश्चिन्त निद्रा आ ही कैसे सकती थी! सुना करता था कि दीन-दुखियों के लिये देवी मृदुला ने तपस्विनी का व्रत लिया है। धन्य है; इनके माता-पिता को धन्य है! (फिर सोचता है)

इन्हें जगाऊँ कैसे ? शत्रु के घर में अधिक समय लगाना भी संकट से रहित नहीं है।

(पैर का शब्द करता है। मृदुला जाग उठती है। सामने एक अपरिचित युवक को देखकर चौंक उठती है। शीघ्र ही स्थिर चित्त होकर उठ बैठती है)

मृदुला—आप कौन हैं ?

अशोक—मैं डाकुओं के सरदार का सेवक हूँ।

मृदुला—यहाँ क्यों आये हैं ?

अशोक—आपको राजमहल के क़ैदख़ाने से बाहर ले जाने के लिये।

मृदुला—डाकू सरदार को कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ क़ैदख़ाने में हूँ ?

अशोक—राजकुमारी पद्मावती ने कहा।

मृदुला—(उत्सुकता से) राजकुमारी वहाँ पहुँच गईं ?

अशोक—हाँ, मैं उनको विश्राम-घर तक पहुँचा कर तब यहाँ आया हूँ।

मृदुला—आप यहाँ कैसे पहुँचे ?

अशोक—महल के पिछवाड़े से रस्सी की सीढ़ी पर चढ़कर।

मृदुला—क्या यह कायरता नहीं ?

अशोक—(कुछ उत्तेजित होकर) निर्दोष पहरेदारों की हत्या करके यहाँ तक पहुँचने की अपेक्षा चुपचाप कार्य सिद्ध कर लेना अपराध नहीं।

मृदुला—क्षमा कीजिये। मैं कैसे विश्वास करूँ कि आप डाकू सरदार ही के भेजे हैं?

अशोक—मैं एक पत्र लाया हूँ।

(पत्र देना है।)

(मृदुला पत्र पढ़ती है। पत्र के नीचे 'जयंत' शब्द पर दृष्टि जाती है; वह चौंक उठती है, पर अपने को शीघ्र ही सँभाल लेती है।)

मृदुला—अच्छा, मैं आप पर विश्वास करती हूँ। कहिये, कहाँ चलना है?

अशोक—मुझे तो आपको राजमहल के क़ैदखाने के बाहर कर देने और पत्र में जो कुछ लिखा है, उसकी तामील करा देने भर की आज्ञा सरदार ने दी है। बाकी आप स्वतंत्र हैं।

(मृदुला उठती है। अशोक को लेकर क़ैदखाने से निकलकर अपने कमरे में जाती है। वहाँ अपनी तलवार ढूँढ़ती है। नहीं पाती है।)

मृदुला—मालूम होता है, मेरी तलवार राजकुमारी ले गईं?

अशोक—मैं अपने साथ दो तलवारें लाया हूँ। क्या आपको तलवार चलाना आता है?

मृदुला—(हँसकर) साधारण।

(अशोक एक तलवार मृदुला को देने लगता है। मृदुला अशोक को अधिक ध्यान से देखती है।)

मृदुला—मैं ने आपका नाम तो पूछा ही नहीं।

अशोक—देवी! मेरा नाम अशोक है।

मृदुला—आप कल्याणी माँ के पुत्र हैं?

अशोक—हाँ।

(मृदुला का जी भर आता है, और हर्ष के मारे रोने को जी चाहता है, पर वह अपने को सँभालती है।)

अशोक—आप मेरी माँ को कैसे जानती हैं ?

मृदुला—उस अन्नपूर्णा भगवती को कौन नहीं जानता ? (तैयार होकर) किधर से चलना होगा ?

अशोक—जिधर से मैं आया हूँ। पर आपको रस्सी पकड़ कर उतरने का अभ्यास है ?

मृदुला—(हँसकर) आज परीक्षा करूँगी। पर फाटक से होकर चलिये न ?

अशोक—यथासभव रक्तपात से बचने की आज्ञा मेरे सरदार की है।

मृदुला—दीन-दुखियों के रक्षक सरदार की आज्ञा का पालन अवश्य होना चाहिये।

(दोनों रस्सी की सीढ़ी से नीचे उतर जाते हैं।)

चौथा दृश्य

समय—प्रातःकाल।

स्थान—डाकू सरदार की एक गुफा।

(गुफा में मनोहरलाल क़ैद है। कुसुम क़ैदख़ाने का द्वार खोलती है। उस दिव्य ज्योतिवाली देवी को देखकर मनोहरलाल बिछौने पर

उठकर बैठ जाता है और टकटकी लगाकर उसे देखने लगता है। कुसुम मनोहरलाल के समीप पहुँचकर प्रणाम करती है)

मनोहरलाल—(आश्चर्य से) तुम कौन हो ?

कुसुम—मै कुसुम हूँ, पिताजी !

मनोहरलाल—(आखे फाड़कर) कुसुम ! कुसुम !! कौन कुसुम !!! हरिबल्लभ की कन्या ?

कुसुम—हाँ पिताजी ! मैं वही कुसुम हूँ।

मनोहरलाल—तुम मेरा वध करने आई हो ?

कुसुम—नहीं पिताजी ! मैं आपको क़ैदख़ाने से छुड़ाने आई हूँ।

मनोहरलाल—(बिछौने से उतरकर कुसुम के पैरों पर गिर पड़ता है) कुसुम ! मुझे क्षमा करो, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ बेटी !

कुसुम—(पीछे हटकर) आप ऐसा न कीजिये पिताजी ! (कंधा पकड़कर उठाती है।)

मनोहरलाल—बेटी कुसुम ! तुम्हारे सामने खड़े होते मुझे लज्जा आती है। (सिर पर हाथ रखकर बैठ जाता है और रोता है।)

कुसुम—पिताजी ! पश्चात्ताप सबसे बड़ा दण्ड है। जो जीवन अभी शेष है, उसे उत्तम कामों मे लगाकर आप मन का क्षोभ मिटाइये।

मनोहरलाल—हाय ! अब से दस वर्ष पहले मैं एक चरित्रवान् व्यक्ति समझा जाता था। कुसङ्गति में पड़कर मैं

कहाँ तक पतित होगया ! हे ईश्वर ! मुझे नरक मे भी ठिकाना न मिलेगा। देवी ! तुम मेरा उद्धार करने के लिये ही पृथ्वी पर आई हो। इस पापी के सिर पर हाथ रखकर कहो कि तुमने इस नराधम को क्षमा किया।

कुसुम—(मनोहरलाल के सिर पर हाथ रखकर) पिताजी ! धैर्य मत छोड़िये। मनुष्य से भूल हो ही जाती है। आपके लिये मेरे मन मे कोई विक्षोभ नहीं है, आप मेरा विश्वास कीजिये। अब आप उठिये; समय बहुत कम है; मुझे और भी आवश्यक काम है। आप जहाँ कहे मैं आपको पहुँचा दूँ।

मनोहरलाल—(कुछ सोचकर) अच्छा, क्या तुम मुझे चोरी से छुड़ाने आई हो ? मैं चोरी से नहीं भागूँगा बेटी ! मेरा धन गया, धर्म गया, पर बेटी ! आत्माभिमान अभी शेष है।

कुसुम—नहीं पिताजी ! मैं स्वयं चोरी करना पसंद नहीं करती। (आज्ञापत्र दिखाती है) इस आज्ञापत्र के द्वारा मैं आपको बाहर ले जा रही हूँ।

मनोहरलाल—मुझे अशोक की माँ के पास पहुँचा दो। उस सती-साध्वी, मेरे घर की लक्ष्मी तपस्विनी के पैरों पर गिरकर मैं उससे क्षमा माँगूँगा; मैंने उसे बड़ा कष्ट दिया है कुसुम !

(कुसुम मनोहरलाल को लेकर बाहर आती है। बाहर चारों तरफ़ सन्नाटा है। कुछ दूरी पर एक रथ तैयार खड़ा है। कुसुम उसमें मनोहरलाल को बैठाकर फिर दूसरी गुफ़ा में जाती है। वहाँ अशोक मिलता है।)

कुसुम—अशोक ! आप अपने पिताजी से नहीं मिलेंगे ?

अशोक—नही ! सरदार की आज्ञा नहीं है।

कुसुम—अच्छा आगे का कार्यक्रम क्या है ?

अशोक—सरदार अपने साथियो के साथ राजकुमारी पद्मावती की सहायता के लिये बड़े सबेरे ही चले गये।

कुसुम—यहाँ और कोई नहीं ?

अशोक—हैं क्यो नहीं ? गृह-रक्षा का पूरा प्रबंध है।

कुसुम—मुझे नहीं मालूम कल्याणी माँ किस घर मे रहती हैं। पिताजी वहाँ जाना चाहते हैं।

अशोक—आप रथ मे बैठकर चलिये, मैं पीछे-पीछे घोड़े पर आता हूँ। घर बताकर मैं भी सरदार के पास चला जाऊँगा।

कुसुम—क्या मेरे लिये आप एक घोड़े का प्रबंध कर सकते हैं ?

अशोक—अवश्य। आप चलिये ! माँ के द्वार पर आपको घोड़ा तैयार मिलेगा। घोड़ा किसलिये चाहिए देवी !

कुसुम—पिताजी को कल्याणी माँ के सिपुर्द कर देने के बाद मेरा कार्य समाप्त हो जाता है। फिर मैं राजकुमारी की सहायता के लिये शीघ्र से शीघ्र जाना चाहती हूँ।

अशोक—इस समय तो मंत्री के घर पर राजकुमारी युद्ध में प्रवृत्त होगी। राजमहल से निकलने के बाद ही आप राजकुमारी की सहायता के लिये उनसे मिल लिये होतीं तो अच्छा था; क्योंकि राजकुमारी अकेली हैं।

कुसुम—और सरदार और उनके साथी ?

अशोक—वे तो केवल राजकुमारी की रक्षा करेंगे। आक्रमण नहीं करेंगे।

कुसुम—(गंभीर मुख-मुद्रा से) कल्याणी माँ का काम सबसे पहले और बाकी संसार का काम पीछे।

अशोक—(कुसुम के चेहरे को देखकर) धन्य हो, देवी !

(कुसुम रथ में बैठ लेती है। रथ चलता है। रथ के पीछे अशोक घोड़े पर जाता है। ग़रीबों के महल्ले में कल्याणी के द्वार पर रथ खड़ा होता है। कुसुम रथ पर से उतरकर कल्याणी का द्वार खटखटाती है। कल्याणी दरवाज़ा खोलती हैं।)

कुसुम—कल्याणी माँ ! रथ में पिताजी हैं। पिताजी का मन बहुत ही निर्बल हो रहा है, उन्हें सँभालना। मुझे इस समय राजकुमारी की सहायता के लिये बहुत जल्द जाना है। इससे ठहर नहीं सकती। माँ ! फिर मिलूँगी।

अशोक—देवी मृदुला, आपके लिये घोड़ा इधर है। पधारिये।

(कुसुम घोड़े पर बैठकर उसे तेज़ी से चलाती है। अशोक पीछे-पीछे जाता है।)

कुसुम—(चलते चलते मन ही मन) राजकुमारी अकेली युद्ध करने गई हैं। उन्होंने बड़े साहस का काम किया है। सरदार और उनके साथी यद्यपि राजकुमारी की रक्षा करेंगे, पर राजकुमारी को सहायता की और भी आवश्यकता है।

(वह घोड़े को बहुत तेज़ ले जाती है)

अशोक—(मन में) अहा, घोड़े की सवारी में देवी मृदुला की समता कोई पुरुष नहीं कर सकता। सरदार अवश्य वीरोचित सब कलाओं मे निष्णात है, पर अश्व-संचालन की ऐसी कुशलता अभी तक मैंने उनमे भी नही देखी।

पाँचवाँ दृश्य

समय—दो घड़ी दिन चढ़े।

स्थान—मन्त्री का घर।

(सरदार और उनके साथी मन्त्री के महल के पास एक स्थान पर एकत्र हैं। राजकुमारी सब के सामने है। मन्त्री की तरफ़ सेनापति तथा राज्य के अन्य सरदार और बहुत से सैनिक खड़े है।)

मन्त्री—(सरदार से) डाकुओं के सरदार! मैंने तुम्हारे अन्य कितने ही अपराधों के साथ तुम्हारे बारे में यह भी सुन रक्खा है कि तुम विवेकवान् व्यक्ति हो। देखने से भी तुम भले आदमी दिखाई पड़ते हो। मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम राज्य के घरेलू मामलों मे हस्तक्षेप न करो।

सरदार—मन्त्रीजी! मैंने केवल राजकुमारी के शरीर की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया है। क्योंकि आप जानते हैं, उन्होंने राजमहल मे मेरे प्राण बचाये थे।

मन्त्री—माता-पिता और राज्य से विश्वासघात करनेवाली राजकुमारी का पक्ष तुम क्यों लेते हो?

सरदार—मैं अपना कर्त्तव्य पालन कर रहा हूँ।

मन्त्री—तो मुझे पहले तुमसे निपट लेना पड़ेगा।

सरदार—(हँसकर) इससे राजकुमारी का मार्ग और भी सरल हो जायगा।

(मन्त्री सेनापति को इशारा करता है।)

सेनापति—(सैनिकों से) मेरे बहादुर सिपाहियो ! इस बदमाश डाकू और इसके साथियों को टुकड़े-टुकड़े कर डालो।

(सैनिक टस से मस नहीं होते)

सेनापति—(क्रोध से) मैं आज्ञा देता हूँ कि इन बदमाशों को यम के घर भेज दो।

(फिर सन्नाटा)

सेनापति—(अधिक उत्तेजित होकर) सैनिको ! तुमने राजा का नमक खाया है, मैं उसकी याद दिलाकर तुमको कहता हूँ कि अपना कर्त्तव्य पालन करो।

एक सैनिक—हम किसके साथ युद्ध करें ? डाकू सरदार हम पर आक्रमण करने नहीं आये हैं, वे राजकुमारी की रक्षा करने आये हैं। और राजकुमारी के विरुद्ध हम शस्त्र नहीं उठायेंगे।

(परिस्थिति को सँभालने के लिये मन्त्री अपने विश्वासी नौकरों को कहता है।)

मन्त्री—राजद्रोह के अपराध में राजकुमारी को क़ैद की सज़ा मिली थी। यह क़ैदख़ाने से भागकर आई है। इसे गिरफ़ार कर लो।

(कुछ सिपाही आगे बढ़ते है। राजकुमारी तलवार लेकर आगे आती है।)

राजकुमारी—धूर्त ! नरक के कीड़े ! स्वामि-द्रोही मन्त्री ! ग़रीब सिपाहियों को मुझे पकड़ने के लिये क्यों भेजता है ? तू क्यों नहीं आगे आता ?

(मंत्री तलवार खींचकर अपने सिपाहियों के साथ झपटता है।)

(राजकुमारी अकेले सब का सामना करती है।)

सरदार—शाबाश राजकुमारी ! (अपने एक साथी से) देखते हो, राजकुमारी अकेली कितनों का मुक़ाबला कर रही हैं। इनका तलवार चलाना, शत्रुओं के वार को रोकना, पैतरे बदलना सब अद्भुत है न ? इनके चेहरे पर शौर्य दमक रहा हैं। कहीं राजा-रानी इस समय अपनी इस संतान को देखते तो उनके हर्ष का ठिकाना न होता।

(राजकुमारी ने मंत्री के सब सिपाहियों को घायल करके गिरा दिया। मंत्री महल के अंदर भाग गया। राजकुमारी विजयिनी होकर मैदान के बीच में खड़ी हो गई।

सेनापति ने राजकुमारी को पकड़ने के लिये पीछे से आक्रमण किया। यह देखकर सरदार आगे बढ़ता है।)

सरदार—सेनापति ! मैं राजकुमारी का शरीर-रक्षक हूँ। राजकुमारी के शरीर पर हाथ नहीं लगा सकते।

(सेनापति सरदार पर झपटता है। सरदार के एक ही वार से सेनापति की तलवार उसके हाथ से छूटकर अलग जा पड़ती है।)

सरदार—सेनापति ! अपनी तलवार उठा लो, या दूसरी ले लो । मैं शस्त्रहीन पर वार नहीं करता ।

(सेनापति चुप खड़ा रहता है । तलवार उठाने का उसे साहस नहीं होता । यह देखकर सारी सेना हँसती है ।)

(सेनापति चुपचाप चला जाता है ।)

राजकुमारी—(सरदार के पास आकर) सरदार ! मंत्री भीतर गया है । वह मेरे माता-पिता पर अत्याचार कर सकता है । हमें शीघ्र इस घर पर अधिकार कर लेना चाहिये ।

सरदार—राजकुमारी, तुम आगे चलो । तुम्हारे शरीर को कोई हानि नही पहुँचा सकता ।

(राजकुमारी महल के फाटक के अंदर जाती है । कोई उसे रोकता नहीं । कुछ साथियों को फाटक पर छोड़कर सरदार अपने वीर साथियों के साथ राजकुमारी के पीछे-पीछे जाता है ।

फाटक पर सेनापति का फिर आक्रमण । सरदार के साथी बड़ी वीरता से सेनापति को फाटक के अंदर जाने से रोकते हैं ।

दूर पर दो सवार तेज़ी से उसी ओर आते दिखाई पड़ते हैं—कुसुम और अशोक । फाटक पर पहुँचकर दोनों घोडे से कूद पड़ते है । कुसुम सिंहिनी की तरह शत्रुओं पर टूट पड़ती है । सेनापति और उसका पुत्र घायल होकर गिर पड़ते हैं । कुसुम और सरदार के साथियों ने उनके हाथ-पैर बाँधकर उन्हें क़ैद कर लिया । बाक़ी सिपाहियों को अशोक ने मार भगाया ।

पद्मावती महल के कई कमरों में राजा-रानी को न पाकर उद्विग्न होती है । वह एक स्थान पर रुककर कान लगाकर सुनती है । एक तरफ से आवाज़ आती है ।

(आवाज़)

हे ईश्वर ! पद्मावती की रक्षा तुम करना।

राजकुमारी—(सरदार से) यह मेरे पिता की आवाज़ है।

(फिर आवाज़)

मंत्री—महाराज ! आप इस पर हस्ताक्षर कर दें, नहीं तो आपके प्राण भी जायँगे और पद्मावती तो मेरी होगी ही।

राजा—विश्वासघाती ! कायर मंत्री ! मेरे प्राण भले हो जायँ, मैं पद्मावती का अनिष्ट अपने हाथ से नहीं कर सकता।

राजकुमारी—सरदार ! इसी तहख़ाने मे से मेरे पिता की आवाज़ आ रही है। हाय ! मेरे कारण मेरे पिता के प्राण संकट में हैं। यह लोहे का द्वार खुले बिना मैं पिताजी को नहीं बचा सकती।

(राजकुमारी कातर-दृष्टि से सरदार का मुँह देखती है)

सरदार—राजकुमारी ! मेरे लिये आपने द्वार खोला था, मैं इसे आपके लिये खोलता हूँ।

(सरदार दरवाजे पर धक्का मारता है। लगातार तीन धक्कों में लोहे का दरवाज़ा टूट जाता है।)

राजकुमारी—(मन में) अहा ! सरदार मे हाथी का-सा बल, सिंह का-सा पराक्रम और पर्वत के समान धैर्य है।

(मन्त्री, उसका पुत्र, दो वधिक तलवारें लेकर निकल आते हैं, और हमला करते हैं। राजकुमारी अकेले उनका मुक़ाबला करती है। सरदार अकेला राजकुमारी पर पीछे से होनेवाले आक्रमणों को रोकता है।

मन्त्री, मन्त्री का पुत्र, दोनों अधिक घायल होकर भागते हैं। सरदार के कहने से उसके साथी उन्हें पकड़ लेते हैं और हाथ पाँव बाँधकर बाहर ले जाते हैं)

सरदार—राजकुमारी ! अब आपके मुख्य-मुख्य शत्रु पकड़ लिये गये। मैं इन्हें अपने यहाँ ले जाकर क़ैद कर देता हूँ। आपकी आज्ञा पाकर ही ये छोड़े जायँगे। अब आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। अब कोई भय नहीं। मैं आपकी सहायता के लिये अपने साथियों को बाहर छोड़े जाता हूँ।

राजकुमारी—सरदार ! आप मेरे माता-पिता से न मिलेंगे ? उनका और मेरा हार्दिक धन्यवाद तो ग्रहण किये जाइये।

सरदार—मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया, इसमें धन्यवाद की आवश्यकता क्या है, राजकुमारी ! और राजा का स्वाभिमानी मन कभी इस बात से प्रसन्न नहीं होगा कि उनका छुटकारा राज्य के शत्रु एक डाकू की सहायता से हुआ। अतएव आप मुझे जाने ही दें।

(सरदार उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही राजकुमारी को अभिवादन करके बाहर जाता है। बाहर अशोक और कुसुम मिलते हैं। कुसुम को वह सिर झुकाकर अभिवादन करता है और अशोक को आज्ञा देता है)

सरदार—अशोक !

अशोक—हाँ, सरदार !

सरदार—मैं जाता हूँ। तुम अपने साथियों को लेकर राजकुमारी को राजमहल में सुरक्षित पहुँचाकर और वहाँ भी

उनकी रक्षा का समुचित प्रबन्ध करके तब मुझसे आकर मिलो। मैं सब बन्दियों को अपने साथ लिवाये जाता हूँ। (अपने साथियों से) मेरे मित्रो ! इन दुष्टों को उठाकर गुफ़ा में ले आओ।

(उसके साथी बन्दियों को घोड़ों पर लादकर ले जाते हैं। सरदार जाता है।)

कुसुम—(मन ही मन) यही मेरा भाई जयंत है। हृदय को कैसे रोकूँ ! जी चाहता है कि दौड़कर भाई के गले से लिपट जाऊँ। वीर भाई ने बहन के अपमान का बदला कितनी लंबी तपस्या करके लिया है ! धन्य है, भइया ! तुमको धन्य है ! हाय ! जयंत को अपनी बहन कुसुम की कुछ भी ख़बर नहीं है। स्त्री-जाति के प्रति उसके नेत्रों में इतना शील है कि उसने एक बार मेरे मुख की ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। देखता तो शायद पहचान लेता।

(राजा, रानी, राजकुमारी बाहर आते हैं। राजकुमारी दौड़कर कुसुम को गले से लगा लेती है। कुसुम राजा, रानी को प्रणाम करती है और बाहर का हाल सुनाती है। राजा और रानी क्रमशः उसे छाती से लगा लेते हैं। रानी उसे बहुत देर तक चिपकाये रखती है।

राजा को देखकर सेना के सिपाही, जो दूर खड़े थे, पास आते हैं और राजा का जयजयकार करते हैं।)

राजकुमारी—पिताजी ! सिपाहियों ने पूरी राजभक्ति दिखलाई। सेनापति और मंत्री के बार-बार कहने पर भी सिपाहियों ने मेरे विरुद्ध शस्त्र उठाना स्वीकार नहीं किया।

(राजा प्रसन्नता प्रकट करता है)

राज-परिवार के लोग राजमहल को जाते हैं। अशोक का दल उनके आगे-पीछे चलता है। राजा के सिपाही भी साथ जाते हैं।

छठा दृश्य

समय—पहर दिन चढ़े।

स्थान—नदी-तट।

(वन में राजकुमारी पद्मावती का प्रवेश)

राजकुमारी—(वन में पहरेदार युवक से) भाई! मैं सरदार से मिलना चाहती हूँ।

युवक—(सादर प्रणाम करके) राजकुमारी! आपके लिये सरदार ने आज्ञा दे रक्खी है कि आप किसी समय आवें आपको कोई न रोके। सरदार नदी-तट पर बैठे हैं। आप इस मार्ग से (मार्ग दिखाता है) चली जायँ। थोड़ी ही दूर पर नदी-तट आपको मिलेगा।

(राजकुमारी युवक को धन्यवाद देकर आगे जाती है। सरदार नदी-तट पर एक सुन्दर शिला पर बैठकर गा रहा है। राजकुमारी एक वृक्ष की ओट में खड़ी होकर उसका गान सुनती है और काग़ज़ पर लिखती जाती है।

सरदार—(गाता है)

आओ, आओ, मधुर बसंत !

मेरे विश्व-सदन में आओ ।

फूलों में मुसकाते आओ पंखड़ियों में गाते ।

बन में रस बरसाते आओ लहरों में लहराते ।

मेरे विश्व-सदन में आओ ॥

मन की नीरवता में आओ प्रिय की याद जगाते ।

आओ प्रेमी के मंदिर में विरह-प्रदीप जलाते ।

मेरे विश्व-सदन में आओ ॥

यौवन के स्वप्नों में आओ नूतन खेल दिखाते ।

द्वार खुले हैं जीवन-गृह के क्यों न यहीं बस जाते ।

मेरे विश्व-सदन में आओ ॥

पराधीन देशों में आओ युवकों को हुलसाते ।

स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर प्राण-समूह चढ़ाते ।

मेरे विश्व-सदन में आओ ॥

सरदार—(आपही आप) आज जगत में बसंत का प्रवेश हो रहा है । मैंने भी पतझड़ की तरह मनुष्य-समाज से सड़ी-गली पुरानी पत्तियाँ तोड़कर फेंक दीं; अब बसंत की तरह उसमें नवीन रस का संचार करके उसे सुन्दर बनाना है । आज से मेरे जीवन में भी शिशिर का अंत और बसंत का आरंभ होगा ।

जयंत—(हँसकर) और 'तू' ?

राजकुमारी—'तुम' से भी अधिक।

जयंत—(हँसकर) देवी मृदुला ने तुमको हरएक विषय में निपुण बना दिया है। पद्मावती! मैंने अभी तक तुमको बैठने के लिये तो कहा ही नहीं। चलो, स्थान पर चलें। यहाँ तो तुम्हारे उपयुक्त कोई आसन नहीं।

राजकुमारी—नहीं जयंत! मैं खड़ी ही खड़ी बात करके शीघ्र वापस जाऊँगी।

जयंत—अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा। यह नदी-तट तुमको सुहावना लगता है न ?

राजकुमारी—तुम्हारी उपस्थिति से यह और भी सुन्दर हो गया है। तुम सौन्दर्य को कैसा समझते हो ?

जयंत—बहुत ही प्यारी चीज। संसार में सौंदर्य न होता तो मनुष्य जंगली जानवरों की तरह खूँखार ही रह जाता। सौन्दर्य से हृदय पवित्र और कोमल होजाता है। सौन्दर्य आत्मा को ऊँचा उठाता है।

राजकुमारी—(उधर ध्यान न देकर) जयंत! आज बसंत-पंचमी है; मैंने इसी से आज बसंती रंग की साड़ी पहनी है। तुमको बसंती रंग कैसा लगता है ?

जयंत—बहुत सुन्दर।

(यकायक उसका मुख गंभीर होजाता है और उसकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़ते हैं।)

राजकुमारी —जयंत ! यह क्या ? क्या मैंने कोई अप्रिय बात कह दी ?

जयंत—नहीं पद्मावती ! तुमने मुझे बहुत ही प्यारी चीज़ का स्मरण दिला दिया है । मेरी माँ का नाम बसंती था ।

(जयंत यकायक चुप होजाता है; क्योंकि वह अपना परिचय नही देना चाहता था)

राजकुमारी—(विषय बदलने के लिये) माँ सचमुच ही बड़ी प्यारी चीज़ है । अच्छा, जयंत ! तुम संस्कृत जानते हो ?

जयंत—हाँ । और तुम ?

राजकुमारी—मैं भी । मृदुला बहन तो संस्कृत की पंडिता हैं न ? उन्ही से सीखा है । अच्छा, मैं तुम्हारी परीक्षा लेती हूँ ।

जयंत—(हँसकर) लो ।

राजकुमारी—(एक फूल दिखलाकर) यह क्या है ?

जयंत—(हँसकर) फूल । वाह ! जैसे तुम पाठशाला में किसी लड़के को पढ़ा रही हो ?

राजकुमारी—थोड़ी देर के लिये मान लो, मैं तुमको पढ़ा रही हूँ ।

जयंत—(खूब हँसकर) और मैं एक छोटा-सा बालक हूँ । अच्छा, आगे चलो ।

राजकुमारी—संस्कृत मे इसके कौन-कौनसे पर्यायवाची शब्द हैं ?

जयंत—पुष्प ।

राजकुमारी—और ?

जयंत—सुमन ।

राजकुमारी—और ?

जयंत—(सोचता है)

राजकुमारी—अब तुम हार गये, मैं बताती हूँ ।

जयंत—(हँसकर) अच्छा, तुम बताओ; मैं हार मानता हूँ ।

राजकुमारी—कुसुम ।

जयंत—हाँ, ठीक है । (यकायक मुख-मुद्रा गंभीर होजाती है)

राजकुमारी—फिर तुम कहाँ चले गये ?

जयंत—मुझे मेरी प्यारी बहन कुसुम की याद आगई ।

(जयंत के नेत्र भर आते हैं)

जयंत—पद्मावती ! आज तुम कितना बड़ा तूफ़ान लेकर आई हो ! मैंने अपने सम्बन्ध में किसी को कुछ न कहने का निश्चय किया था, पर स्वभाव सबसे प्रबल होता है ।

राजकुमारी—अच्छा, तुम्हारी कुसुम को कोई तुमसे मिला दे, तो उसे तुम क्या दोगे ?

जयंत—मेरे पास तो दीन-दुखियों की सेवा है ।

राजकुमारी—तो कुसुम के लिये तुम्हारे नेत्रों में से आँसू कहाँ से आये थे ?

जयंत—वे आँसू मेरी सीमा के बाहर से आये थे । मैं उनका उद्गम-स्थान नहीं जानता ।

राजकुमारी—अच्छा, दीन-दुखियों की सेवा तो दे सकते हो ?

जयंत—ख़ुशी से ।

राजकुमारी—मेरी मृदुला बहन ही तुम्हारी कुसुम है ।

(जयंत की आँखें डबडबा आती हैं)

जयंत—(कुछ ठहरकर) पद्मावती ! इस अत्यन्त सुखदायक समाचार के लिये यह ग़रीब तुम्हें क्या दे ?

राजकुमारी—दीन-दुखियो की सेवा ।

(वह राजकुमारी के नेत्रों से दृष्टि मिलाकर देखने लगता है)

राजकुमारी—अच्छा, जयंत ! जाने दो; मैं नहीं जानती थी कि तुम कुसुम का नाम सुनकर इतना गंभीर हो जाओगे । आज बसंत है, आज उदास होना ठीक नहीं ।

जयंत—कुसुम से बिछुड़े आज दस बारह बरस होगये । मेरी उस बालिका बहन को दुष्ट मनोहरलाल के सिपाही जबरदस्ती उठा ले गये थे । तब से उसका पता ही न चला । हा, कुसुम ! एक ही रक्त-मांस के बने हुये हम दो पुतले हैं, इससे इतना आकर्षण है ।

राजकुमारी—अच्छा जी, तुम तो कहाँ से कहाँ चले गये ! मैं जाती हूँ ।

जयंत—नहीं, राजकुमारी ! ठहरो; तुम मुझे बहुत प्रिय लग रही हो । ठहरो, मैं तुमसे बातें करता हूँ ।

राजकुमारी—अच्छा, तुम्हारा स्वर तो बहुत मधुर है! तुम बहुत ही अच्छा गाते हो।

जयंत—तुमने कहाँ सुना ?

राजकुमारी—तुम गारहे थे, तब मैं पेड़ की आड़ में खड़ी सुन रही थी।

जयंत—क्या चोरी करना भी कुसुम ने तुमको सिखा दिया है ?

राजकुमारी—तुमको किसने सिखाया ?

जयंत—मैंने क्या चुराया ?

राजकुमारी—(हँसकर) हृदय।

जयंत—(गंभीर होकर) पद्मावती ! मैं कोई चीज़ चुराकर उसे रक्खूँगा कहाँ ? जगह कहाँ है ? सारा घर एक ही चीज़ से भरा हुआ है। वह है दीन-दुखियों का आर्त्तनाद।

राजकुमारी—जयंत ! यदि दीन-दुखियों की सेवा में तुमको कोई सहायता पहुँचाये तो तुम उसे प्यार करोगे ?

जयंत—अवश्य।

राजकुमारी—मै राज-सुख को लात मारती हूँ। मुझे तुम इस सेवा मे ले लो।

जयंत—पद्मावती ! यह प्रेम का पंथ बड़ा कठिन है। इसमें दुःख ही सुख है और पीड़ा ही आराम है। राज-सुख में पली हुई एक राजकुमारी से यह मार्ग नहीं चला जायगा।

राजकुमारी—प्रियतम ! मैं उसी प्रेम के पंथ पर काँटों पर

चलूँगी; भूखी-प्यासी रहकर स्वर्गीय सुख का आनन्द अनुभव करूँगी; झोपड़ी में रहकर महलों के सुख को तुच्छ समझूँगी; दीन-दुखियों की सेवा करके, तुम्हारे चेहरे पर प्रसन्नता की एक रेखा उत्पन्न करके मैं उसपर अपना सर्वस्व निछावर कर दूँगी; तुम्हारे प्रेम की वेदना मेरे जीवन के चारोंओर रातदिन महासागर की लहरों की तरह नृत्य करेगी।

जयंत—पद्मावती ! आवेश में कोई कार्य कर बैठना ठीक नहीं। सोच-समझ लो। प्रकाश को आगे लेकर चलो, पीछे रक्खोगी तो तुम्हारी ही छाया तुम्हारे मार्ग को अंधकारमय बना देगी। प्रेम का पेट साधारण त्याग से नहीं भरता।

राजकुमारी—जयंत ! तुम पुरुष हो। स्त्री के हृदय की महिमा नहीं जानते हो। उसे धुन सवार होजाय तो वह नरक को स्वर्ग और स्वर्ग को नरक बना सकती है।

(सरदार गंभीर होजाता है)

राजकुमारी—मुझे धन नहीं चाहिये, सुख नहीं चाहिये, मुझे केवल सच्चा प्रेम चाहिये।

जयंत—मुझमें तुमने सच्चे प्रेम की कल्पना कैसे की ?

राजकुमारी—सच्चे प्रेम बिना सेवाभाव हृदय मे आ ही नहीं सकता। तुम वीर हो, सदाचारी हो, तुम्हारा ही हृदय प्रेम का सच्चा निवास-स्थान है। मेरे जीवन के प्रकाश ! मैं तुम्हारे उसी प्रेम मे विलीन होना चाहती हूँ; द्वार खोल दो।

(सरदार सोच रहा है)

राजकुमारी—जयंत ! मैं तुम्हारे साथ ऐहिक भोग-विलास की लालसा से नहीं आना चाहती हूँ; आत्मा की सद्गति के लिये आ रही हूँ।

जयंत—(प्रसन्न मुख-मुद्रा से) पद्मावती ! तुम बाहर जितनी सुन्दर हो, उतनी ही भीतर भी हो।

राजकुमारी—(प्रसन्न होकर) मेरा बाहरी सौन्दर्य तुमको प्रिय है ?

(जयंत ध्यान से देखता है)

राजकुमारी—मेरा सौन्दर्य मेरे नेत्रों मे है। मुझे लोग पद्माची कहते हैं। जयंत ! मेरा सौन्दर्य तुम्हारे प्रेम के दर्पण में और भी निखर उठेगा।

(जयंत देर तक ध्यान से देखता है।)

राजकुमारी—जयंत ! क्या देख रहे हो ?

जयंत—तुम्हारे सौन्दर्य मे सौन्दर्य के विधाता का दिव्य रूप। अहा ! कैसा सुन्दर दृश्य है ! सरिताएँ संगीत कर रही है; समुद्र की तरंगें उचक उचक कर उस रूप को देखना चाहती है; पर्वत उसे देखकर ठकरा गये हैं, सूर्य, चन्द्रमा और तारागण उसके चारोओर आनंद के मारे नृत्य कर रहे हैं। कैसा अद्भुत दृश्य है ! तुम भी देखो, पद्मावती !

राजकुमारी—कहाँ देखूँ ?

जयंत—कमल ऐसे नेत्रों में।

राजकुमारी—जयंत ! मैं उसी दिव्य रूप के दर्शन के लिये तुम्हारी जीवन-संगिनी होना चाहती हूँ।

जयंत—तुम्हारे जीवन पर तुम्हारा अधिकार है ?

राजकुमारी—है; क्योंकि मै उसे त्याग सकती हूँ।

जयंत—दीन-दुखियों की सेवा से और तुम्हारे विवाह से क्या संबंध है ?

राजकुमारी—हमें राज्य मिलेगा।

जयंत—मुझे राज्य की लालसा कहाँ है ?

राजकुमारी—सच है; पर दीन-दुखियो की सेवा के लिये अधिक बल मिले तो उसकी उपेक्षा क्यों करनी चाहिये ?

जयंत—नहीं करनी चाहिये।

राजकुमारी—तो बोलो, मुझे जीवन-संगिनी बनाते हो ?

जयंत—(कुछ सोचकर) शारीरिक सुख भोग की लालसा से नहीं, केवल आत्मोन्नति के लिये, दीन-दुखियों की सेवा के लिये, मनुष्य-समाज में आनन्द और सुख की वृद्धि के लिये मैं तुमको जीवन-संगिनी स्वीकार कर सकता हूँ। तुमको स्वीकार है ?

(राजकुमारी के नेत्रों मे हर्ष के आँसू आ जाते हैं; वह साड़ी के अन्दर से फूलों की एक माला निकालती है; सरदार सिर झुका देता है, राजकुमारी उसके गले में माला डाल देती है।)

राजकुमारी—मेरे नाथ ! तुमको प्रारंभ में तुम्हारी पूजनीया माता और कुसुम की याद दिलाकर मैंने जो कष्ट पहुँचाया,

उसके लिये क्षमा करना । मृदुला बहन के आग्रह से यह जाँच करने के लिये कि तुम वास्तव में कुसुम के भाई जयंत हो या नहीं, मैंने यह युक्ति की थी ।

जयंत—पद्मावती ! कुसुम मेरी बहन है, उसके लिये मैं जितना हर्ष और विषाद का अनुभव करता हूँ, उतना ही मनुष्य-समाज की सब बहनो के लिये करने लगूँ तब तपस्या सफल हो और आत्मा का दिव्य रूप दिखाई पड़ने लगे। अच्छा, पद्मावती ! तुमको खड़े-खड़े देर हो गई है। तुम थक गई होगी, बैठकर विश्राम कर लो ।

राजकुमारी—नही जयंत ! मुझे अब जाने दो। आज अपने माता-पिता की तरफ से तुम को राजमहल में पधारने का निमंत्रण देने आई हूँ।

जयंत—किस समय के लिये ?

राजकुमारी—आज तीसरे पहर ।

जयंत—अच्छा, आऊँगा ! (फिर हँसकर) राजा की मुझ पर यकायक कृपा तुम्हारे कारण हुई जान पड़ती है ।

राजकुमारी—नहीं जयंत ! मेरे माता-पिता बड़े ही अच्छे स्वभाव के हैं। मंत्री दुष्ट है; उसने उनको विवश करके राज मे अत्याचार फैला रक्खे थे। तुम्हारी कृपा से राज में पापाचार कम हो गये; मेरे पिता के आसपास का वातावरण पवित्र हो गया; अब वे अपने स्वाभाविक रूप मे बड़े प्रिय

हो गये हैं। मैं तुमको दे दी जाऊँ, यह प्रस्ताव मेरी माता ने पिताजी के सामने रक्खा था।

जयंत—यकायक ?

राजकुमारी—नहीं; राजमहल मे आकर, स्वस्थ होकर पिताजी ने मुझसे एक-एक करके सब समाचार सुने और वे तुम्हारे चरित्र पर मुग्ध हो गये। फिर उन्होंने माताजी से पूछा—सरदार को इस उपकार के बदले मे क्या उपहार दिया जाय ? माताजी ने कहा—पद्मावती।—अच्छा, देर हो रही है। अब जाती हूँ। ये बाते फिर कभी बताऊँगी। तुम आओगे न ?

जयंत—(हँसकर) तुमको डाकू पर विश्वास नहीं है ?

राजकुमारी—(हँसती हुई प्रणाम करती है) कैसे विश्वास हो ? अब की बार तुमने राजकन्या पर डाका डाला है। इसे भी दीन-दुखियों में बाँट देना !

(राजकुमारी जाती है। सरदार ध्यान-मग्न हुआ अपने स्थान की ओर जाता है)

सातवाँ दृश्य

समय—दिन का तीसरा पहर।

स्थान—राजमहल।

(राजमहल सजाया हुआ है। एक शामियाने के नीचे बहुत-सी कुर्सियाँ और तख्त क़ायदे से रक्खे हैं।)

जयत अपने साथियों के साथ फाटक तक आता है। साथियों को बाहर छोडकर वह अकेला महल के अन्दर जाता है।

राजा उसके स्वागत के लिये आगे आता है। जयंत राजा को प्रणाम करता है।

राजा सरदार को ले जाकर एक कुरसी पर बैठा देता है।

शामियाने में नगर के सभी प्रतिष्ठित नागरिक और राज के सभासद उपस्थित हैं। बाहर साधारण जनता की अपार भीड़ है।)

राजा—पुत्र जयंत! आज तुमको देखकर मेरा हृदय शीतल हो रहा है।

(जयंत राजा के नेत्रों में आनन्द अनुभव करता है)

राजा—तुम अकेले ही आये?

जयंत—महाराज! मेरे संगी-साथी भी आये हैं। सब फाटक पर हैं। राजकुमारी ने केवल मुझे ही राजमहल में आने का निमंत्रण दिया था। अकेले आने में भय किस बात का? उत्तम वंश में उत्पन्न हुई राजकुमारी कभी विश्वासघात नहीं कर सकती।

राजा—(प्रसन्न होकर) ठीक है; राजकुमारी ने वीर और बुद्धिमान पुरुष को वरण किया है। (अपने सभासदों से) सब को अंदर लाकर सत्कारपूर्वक बैठाओ।

(सभासद जाते है; जयंत के साथियों को प्रेमपूर्वक लाकर शामियाने के नीचे बैठाते हैं।

रानी और पद्मावती का प्रवेश। सरदार उठकर रानी को प्रणाम करता है।)

रानी—पुत्र जयंत! अमर कीर्ति के अधिकारी बनो।

राजा और रानी—भाग्यवान् जयंत (पद्मावती का हाथ आगे करके) इस राज-वंश की सबसे अमूल्य मणि इस पद्मावती को हम तुम्हें दे रहे है। इसे ग्रहण करो।

(सरदार पद्मावती का हाथ पकड़ लेता है। बाजे बजते हैं; फूलों की वर्षा होती है। जयजयकार होता है।)

रानी—मैं इसकी माता हूँ जयंत! इससे तुम्हारे आदर्श पर मेरी दृष्टि उतनी नहीं है, जितनी इसके सुख पर। मैं विनय करती हूँ कि इसे सुख से रखना।

जयंत—(राजा और रानी को फिर प्रणाम करके) माताजी! राजकुमारी संसार मे दुःख भोगने के लिये नहीं आई है।

राजा—बेटा! एक तुच्छ भेंट और है।

(राजा राजमुहर लगा हुआ एक काग़ज़ जयंत के हाथ में देता है।)

राजा—मै सोनपुर का राज्य जयंत और पद्मावती को दीन-दुखियो की सेवा के लिये देता हूँ।

(जयंत ले लेता है। जयजयकार होता है)

जयंत—(पद्मावती से) महाराज और महारानी के जीवन-काल तक तो राज्य उन्हीं के पास रहना चाहिये।

पद्मावती—वे तो आज ही ग़रीबो के महल्ले में चले जायँगे।

रानी—(जयंत से) पद्मावती ने अपने और तुम्हारे लिये ग़रीबो के महल्ले में झोपड़े बनवाये हैं। हम दोनो ने भी वहीं रहकर तुम दोनो की सेवा मे जीवन बिताने का निश्चय किया है।

(जयत की आँखें डबडबा आती हैं। पडित देवदत्त और कमला का प्रवेश। जयंत दोनों की चरण बन्दना करता है। देवदत्त और कमला जयंत और पद्मावती पर फूल और अक्षत चढ़ाते हैं।)

देवदत्त—पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा चरित्र इस

देश के युवकों के लिये आदर्श हो। (पद्मावती से) राजकुमारी ! आर्य-कन्यायें तुम्हारी कीर्ति से अपना जीवन अलंकृत करेंगी।

(पद्मावती प्रणाम करती है)

(मनोहरलाल, कल्याणी और कुसुम का प्रवेश)

मनोहरलाल—(जयंत के पैर पर पड़कर) मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। पश्चात्ताप की ज्वाला में जला जा रहा हूँ। मुझे क्षमा करके नरक से मेरा उद्धार करो।

जयंत—आप शान्त होइये। कुसुम ने आपको क्षमा कर दिया है; आपको वह पिता-स्वरूप मानती है; अब आप मेरे भी पिता हैं।

कुसुम—जयंत भइया ! और पद्मावती बहन ! ये कल्याणी माँ हैं। इन्हे प्रणाम करो।

(जयंत प्रणाम करता है। पद्मावती भी प्रणाम करती है। कल्याणी माँ उन पर और पद्मावती पर फूल चढ़ाती है।)

जयंत—कल्याणी माँ ! यह सब आप ही की आत्मा का विकास है।

(कल्याणी हर्ष के मारे बोल नहीं सकती)

जयंत—(कुसुम से) तुम अबतक कहाँ थी कुसुम ?

कुसुम—भइया ! मैं पागल होरही थी। घंटों से उस कोठरी में खड़ी-खड़ी खिड़की से तुमको देख रही थी। मन को बहुत कहती थी कि जगत् में जैसे और भाई हैं वैसे जयंत भी है; पर शिक्षा और ज्ञान से भी परे न जाने किस स्थान से तुम्हारे लिये

प्रेम की जो एक धारा उमड़ आई थी, मै उसीमें डूबती उतराती थी। भइया! तुम मुझे बहुत प्रिय लग रहे हो। (कुसुम भाई से लिपट जाती है।)

(जयत की आँखें भर आती हैं)

जयंत—कुसुम! तुम्हारी सखी पद्मावती ने तो मेरे साथ दीन-दुखियों की सेवा का व्रत लिया है; तुम क्या करोगी?

कुसुम—मै कल्याणी माँ के साथ रहूँगी। कल्याणी माँ तो बहुत पहले से ग़रीबो के महल्ले मे जा बसी है। अब पिताजी भी वहीं रहते है। पिताजी का तो अब सारा समय ग़रीबो की सेवा मे जाता है। वे हरएक ग़रीब को नारायण कह-कर पुकारते है, इससे उनका नाम ही 'नारायण बाबा' होगया है।

(जयंत मनोहरलाल की ओर हर्ष से देखता है)

जयत—और अशोक?

कुसुम—वह मेरा भाई है। वह एक ग़रीब कन्या के साथ वैवाहिक जीवन बिताना चाहता था; कल्याणी माँ ने गौरी के साथ उसका सम्बन्ध निश्चय कर दिया है। हम सब लोग ग़रीबो के महल्ले मे साथ ही रहेगे।

जयंत—गौरी कहाँ है?

कुसुम—वह विजय नाम से तुम्हारे दल मे है।

(जयत आश्चर्य करता है)

कल्याणी—भगवती कुसुम ने स्त्री-जाति की सेवा के लिये आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने का व्रत लिया है।

(जयजयकार होता है। जयंत कुसुम की ओर श्रद्धा से देखता है। कुसुम का मुख गम्भीर रहता है।)

जयंत—(राजकुमारी से) बन्दियों के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है ?

राजकुमारी—(राजा से) पिताजी ! आप राज्य के कुल बन्दियों को मुक्त कर देने की आज्ञा दीजिये ।

राजा—(हँसकर) बेटी ! राज्य के मालिक तो अब तुम दोनो हो । पर उत्सव की पूर्णता तक मैं अपना ही अधिकार मानता हूँ । मैं हुक्म देता हूँ कि राज्य के सब बन्दी छोड़ दिये जायँ, ताकि वे भी इस आनन्द में भाग ले सकें ।

(जय-जयकार; फूलों की वृष्टि)

राजकुमारी—(जयंत से) पिताजी और माताजी बहुत देर से बैठे हैं ।

जयंत—(राजा-रानी से) महाराज ! अब और कुछ मेरे योग्य सेवा हो सो आज्ञा कीजिये ।

राजा और रानी—(उठकर) कल्याण-मार्ग पर प्रस्थान करने के लिये आज का उत्सव चिरस्थायी हो । आज के हर्ष में सहभोज का प्रबन्ध मेरे झोपड़े मे किया गया है । अब वहाँ चलना चाहिये ।

(राजा, रानी, जयंत, पद्मावती, कल्याणी, कुसुम, देवदत्त, कमला, जयंत के साथी, सभासद आदि ग़रीबों के महल्ले की ओर जाते हैं । जनता जयजयकार करती और फूल बरसाती है ।

राजमहल के सामने [illegible]-नृत्य के साथ "आओ, आओ, मधुर [illegible] होता है

समाप्त